के

संघर्ष के सौ वर्ष

संस्कृति सूचना कार्यालय
चीनी लोक गणतंत्र का दूतावास
नयी दिल्ली
१९५६

विषय-सूची

संघर्ष के सौ वर्ष

साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध चीनी जनता का संघर्ष

फ़ान वेन-लान

विज्ञान अकेडमी की तृतीय इतिहास इंस्टीच्यूट के निर्देशक

उन्नीसवीं शती के मध्य में विदेशी पूँजीवाद ने चीन में अपने पंजे गड़ाने शुरू किये और तभी से, धीरे-धीरे, कालान्तर में चीन एक अर्ध-सामन्ती और अर्ध-औपनिवेशिक देश बन गया। साथ ही, एक लम्बे और कटु संघर्ष का सूत्रपात हुआ और चीनी जनता ने, असफलताओं से भयभीत न होते हुए, अडिग रह कर सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के अत्याचार से लोहा लिया। जैसा कि माओ त्से-तुंग ने अपनी रचना 'चीनी क्रान्ति और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी' में बताया है: "चीनी सामन्तवाद की सांठ-गांठ में, साम्राज्यवाद के हाथों जब चीन का अर्ध-औपनिवेशिक और औपनिवेशिक रूपान्तर हो रहा था, तब साथ साथ साम्राज्यवाद और उसके गुर्गों के खिलाफ चीनी जनता का संघर्ष भी चल रहा था।" साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध चीनी जनता के संघर्ष ने लम्बा और कष्टप्रद रास्ता तय किया जो घोर कठिनाइयों से भरा था। सौ वर्ष तक यह लम्बा संघर्ष चला और १९४९ में जाकर इसने अन्तिम विजय प्राप्त की जब कि चीनी जनता ने अपने कट्टर दुश्मनों—अमरीकी साम्राज्यवादियों और च्यांग काइ-शेक गुट के प्रतिक्रियावादियों को, जो विदेशी साम्राज्यवाद और उसके देशी दलालों—सामन्तों व पूंजीपतियों के प्रमुख प्रतिनिधि थे, धूल चाटने को मजबूर कर दिया।

चीनी सभ्यता और संस्कृति विश्व में सबसे पुरानी है। चीनी लोगों की किफ़ायतशारी, उद्यमशीलता, साहस तथा शान्ति और स्वतंत्रता के लिए उनका प्रेम प्रसिद्ध है। अत्याचार और विदेशी आक्रमण के विरुद्ध वे क्रान्तिकारी संघर्ष की एक लम्बी और प्रेरणा देने वाली परम्परा के धनी हैं। लेकिन तीन

हज़ार वर्ष के सामन्तवाद ने चीन की आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति रोक दी । अट्ठारवीं शती के उत्तरार्ध में यूरोपीय पूंजीवाद ने, जो तब तक काफ़ी विकसित हो चुका था, बाज़ारों और उपनिवेशों की टोह मे, बड़ी तत्परता मे सारी दुनिया में पासा फेंकना शुरू किया । पुराना चीन, देखने-देखते, पश्चिम की खूंख्वार पूंजीवादी ताकतों का एक सहज शिकार हो गया ।

साम्राज्यवाद के चंगुल में

अट्ठारवीं शती के अन्त में ब्रिटेन ने चीन को अफ़ीम से पाटना शुरू कर दिया और देश की चांदी जहाज़ों में भर-भर कर बाहर जाने लगी । १८३९ में मांचू सरकार ने अफ़ीमबन्दी की निगरानी के लिए लिन त्से-शु को स्पेशल कमिश्नर बना कर कैण्टन भेजा । कैण्टन दक्षिणी चीन की बन्दरगाह है । क्योंकि अफ़ीम अंग्रेज़ों के लिए भारी मुनाफ़े का धंधा थी, वे उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए, और 'मुक्त व्यापार' के अपने दावे को बलपूर्वक सिद्ध करने के लिए ब्रिटेन की सरकार ने हथियारबन्द सेनाओं का सहारा लिया । फलतः १८४० में, ब्रिटेन और चीन के बीच, पहला अफ़ीम-युद्ध छिड़ गया । लिन त्से-शु सामन्ती ज़मींदारों के अधिक सचेत भाग का आदमी था । वह अंग्रेज़ों से लोहा लेने के पक्ष में था और जनता, अपनी स्वतंत्र इच्छा से, सशस्त्र संघर्ष में जुटी थी । लेकिन मांचू सरकार डरी कि अगर लोगों के हाथ में एक बार हथियार पहुंच गये तो वे बेकाबू हो जाएंगे । इसलिए उसने हमलावरों के सामने घुटने टेक कर मामले को ख़त्म करने में ही अपनी कुशल समझी । उसने पूरी उतावली के साथ युद्ध से हाथ खींच लिया और १८४२ में ब्रिटेन से नानकिंग में एक संधि कर ली गयी । यह संधि अपमानजनक शर्तों से भरी थी । प्रभुसत्ता को तिलांजलि देने, हर्जाना अदा करने और कुछ इलाकों पर से अपना अधिकार छोड़ने जैसी अनेक बातें इसमें थीं । ब्रिटेन की देखादेखी अमरीका और फ्रान्स ने भी मांचू सरकार को इसी तरह की संधियां करने के लिए बाध्य किया । इन असमान संधियों पर हस्ताक्षर करने के बाद, देखते-देखते, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में चीन का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा । इसी अरसे में, विदेशी माल की बाढ़ से चीन का आर्थिक ढांचा तेज़ी से चरमराने लगा और उसने, धीरे-धीरे, अर्ध-सामन्ती तथा अर्ध-औपनिवेशिक रूप धारण कर लिया ।

ताइपिंग क्रान्ति

धरती का स्वामित्व अफ़ीम-युद्ध से भी पहले मुट्ठी भर लोगों के हाथ में केन्द्रित था, और सामन्ती ज़मींदारों तथा किसानों के बीच वर्ग-द्वेष तीव्र हो चुका था। कोढ़ में खाज की भांति, अफ़ीम-युद्ध के बाद मांचू सरकार ने युद्ध का सारा बोझ—सारा खर्च और हर्जाना जनता के कंधों पर लाद दिया। उधर, विदेशी व्यापार का पलड़ा इतना भारी था कि देशी व्यापार अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में पड़ गया। इस उत्पीड़न और शोषण से तंग आ कर जनता मांचू सरकार के खिलाफ़ विद्रोह पर उतारू हो गयी। १८४० के बाद दस वर्षों में कभी यहां तो कभी वहां किसान-विद्रोहों की बराबर लपटें उठती रहीं। इन छुटपुट लपटों ने अन्त में दावानल का रूप धारण कर लिया—ताइपिंग का क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रकट हुआ जिसने समूचे राष्ट्र को नीचे से ऊपर तक हिला दिया।

ताइपिंग आन्दोलन एक ऐसी किसान-क्रान्ति थी जिसका स्वरूप निश्चित रूप से सामन्त-विरोधी था। १८५१ में, दक्षिणी चीन के क्वांगसी प्रान्त में जनता के सशस्त्र विद्रोह के साथ उसका सूत्रपात हुआ। हुंग श्यु-चुआन नामक एक बुद्धिजीवी, जो किसानों की ही सन्तान था, इस विद्रोह का नेता बना। उसने अपना एक राज्य कायम किया जिसका नाम ताइ पिंग तिएन कुओ (दिव्य शान्ति राज्य) था। इसके बाद वह अपनी विद्रोही सेनाओं के साथ उत्तर की दिशा में यांगत्ज़ी घाटी की ओर बढ़ चला। जनता उसके साथ थी। उसकी सेना का कोई ख़ास विरोध नहीं हुआ। १८५३ में नानकिंग में उसने अपनी राजधानी कायम की। फिर ताइपिंग शासन का विस्तार करने के लिए उत्तर और पश्चिम की दिशाओं में अभियान शुरू हुए। क्रान्ति की लहरों का यह हाल था कि मांचू सरकार कुछ घड़ी की मेहमान मालूम होती थी। विदेशी आक्रान्ताओं के हृदय पर, जिनमें ब्रिटेन सबसे आगे था, सांप लोटने लगा। क्रान्तिकारियों की सफलता ने उनकी नींद हराम कर दी। दूसरे अफ़ीम-युद्ध के बाद तथा चीन के प्रभुत्वाधिकारों को और भी अपने चंगुल में जकड़ते हुए, उन्होंने क्रान्ति के दमन में भ्रष्ट मांचू सरकार का साथ दिया। 'ताइपिंग दिव्य राज्य' देशी और विदेशी क्रान्ति-विरोधी ताकतों के शक्तिशाली गठबन्धन से जमकर, वीरतापूर्वक, लोहा लेता रहा। चौदह साल तक उन्हें लोहे के चने चबवाने के बाद अन्त में १८६४ में, उसे हथियार डालने पड़े। नानकिंग का पतन हो गया। जनता का क्रान्तिकारी आन्दोलन, कुछ समय के लिए, तितर-बितर हो गया।

इसके बाद का चीनी इतिहास दो विरोधी विकास-पथों के बीच संघर्ष का इतिहास है। एक पथ वह था जो, दो अफ़ीम-युद्धों के फलस्वरूप, चीन को अर्ध-औपनिवेशिक या औपनिवेशिक स्थिति की ओर ले जाता था। विदेशी आक्रान्ता, देशी सामन्ती शासक वर्ग के साथ मिलकर, चीन को इसी पथ पर घसीट रहे थे। दूसरा पथ वह था जिसका प्रतीक ताइपिंग क्रान्ति थी––आज़ादी और जनतंत्र का पथ। यह साम्राज्य-विरोधी और सामन्त-विरोधी पथ था, और जनता इसके लिए अडिग तथा अथक संघर्ष कर रही थी।

'ताइपिंग दिव्य राज्य' की हार से विदेशी पूंजीवाद का आक्रमण और भी तेज़ हो गया। १८९४ में जापान ने चीन के खिलाफ़ आक्रमण की आग भड़का दी। इस युद्ध में चीन को हार खानी पड़ी और उसके फलस्वरूप तैवान तथा पेंघु द्वीपसमूह उसके हाथ से निकल गये। उसके बाद, पांच साल तक पूंजीवादी देशों में चीन की महत्वपूर्ण समुद्री बन्दरगाहों पर पंजे गड़ाने की होड़ चलती रही। चीन की प्रभुसत्ता को पांव तले रौंद कर उन्होंने अपने-अपने 'प्रभाव-क्षेत्रों' की रचना की, और वे चीन की वास्तविक हिस्सा-बांट की तैयारियां करने लगे। चीन के सामने अब संकट उपस्थित था।

सुधार आन्दोलन

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में चीन के अनेक व्यापारियों, ज़मीदारों और पदाधिकारियों ने आधुनिक उद्योग में अपनी पूंजी लगायी। इस तरह चीन के एक अपने पूंजीपति वर्ग का निर्माण शुरू हुआ। १८९४–९५ के चीन-जापान युद्ध के बाद, कांग यू-वे के नेतृत्व में पूंजीवादी सुधारकों के एक दल ने 'सुधार द्वारा राष्ट्र के उद्धार' का सुझाव रखा और उसके लिए राजनीतिक आन्दोलन शुरू किया। वे अपने मंच से वैधानिक राजतंत्र तथा उद्योग, कृषि और वाणिज्य के विकास की मांग पेश करते थे। वे सामन्ती व्यवस्था के मूल स्वरूप को कायम रखते हुए, शासक वर्ग द्वारा संचालित सुधारों के जरिये पूंजीवाद का विकास चाहते थे। मांचू अधिकारियों का एक हिस्सा उनकी इन मांगों का समर्थक था।

उस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों को देखते हुए यह एक प्रगतिशील कार्यक्रम था। इसलिए कट्टरपंथी इससे बुरी तरह बौखला उठे। विधवा राजमाता त्से शि उन कट्टरपंथियों की मुखिया थीं। उनके फ़ौलादी पंजे में फंस कर

आन्दोलन ज़्यादा दिन टिक न सका और जल्दी ही ख़त्म हो गया। उसके नेता या तो भाग गये या शहीद हो गये। १८९८ के सत्ताहरण की संक्षेप में यही कहानी है।

यि हो तुआन (बौक्सर)

पूंजीवादी सुधार आन्दोलन जिन दिनों चल रहा था, उन्हीं दिनों चीन के किसानों में एक अन्य आन्दोलन--यि हो तुआन या बौक्सर--के भी अंकुर फूट रहे थे। चीनी किसानों का यह आन्दोलन कहीं अधिक व्यापक, साम्राज्य-विरोधी और देशभक्तिपूर्ण था। यि हो तुआन एक गुप्त संगठन था जिसे उत्तरी चीन के किसानों और दस्तकारों ने संगठित किया था। इसने जनता को एकजुट किया और विदेशी आक्रान्ताओं के खिलाफ़ सशस्त्र संघर्ष छेड़ा। विदेशी आक्रान्ताओं और साम्राज्यवादियों की करतूतों और अत्याचारों ने जनता की आंखें अच्छी तरह खोल दी थी। १८९५ के चीन-जापान युद्ध के बाद जिस बुरी तरह से उन्होंने राष्ट्र की सम्पत्ति को लूटा और चीन की छाती पर मूंग दली, उससे जनता तंग आ चुकी थी। फलतः १८९९ और १९०० में शान्तुंग से लेकर होपे और शान्सी प्रान्तों तक यह आन्दोलन दावानल की भांति फैल गया। बौक्सर तथा जनता के अन्य सशस्त्र संगठन चीन के उत्तरपूर्वी और उत्तरपश्चिमी इलाकों तथा यांगत्ज़ी घाटी में जगह-जगह क्रियाशील हो उठे। ताइपिंग क्रान्ति से अनुप्राणित बौक्सर युद्ध ने उस समय एक बड़े और व्यापक क्रान्तिकारी किसान आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और विदेशी आक्रान्ताओं का हुलिया तंग कर दिया। बदला लेने की भावना से पागल हो ब्रिटेन, अमरीका, जापान, ज़ारशाही रूस, जर्मनी, फ्रान्स, आस्ट्रिया और इटली ने १९०० के शिशिर में एक संयुक्त सेना भेजकर अत्यन्त बर्बरता के साथ चीनी देशभक्तों का क़त्ले-आम किया। क्रान्तिकारी शक्तियों के दमन के लिए उन्होंने मांचू सरकार को भी बाध्य किया। जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष, भीतरी और बाहरी प्रतिक्रिया के इस संयुक्त हमले की ताब न ला सका और उसे एक बार फिर विफलता का मुह देखना पड़ा। लेकिन, इस हार के बावजूद, चीनी जनता का रक्त बेकार नहीं गया। उसके प्रतिरोध ने आक्रान्ताओं का दिमाग ढीला कर दिया। एल्फ्रेड वैल्डर्सी नामक एक जर्मन जनरल ने, जो संयुक्त सेना का कमांडर था, कहा कि चीन के टुकड़े-टुकड़े करना बुद्धिमानी की नीति नहीं है। विदेशी ताकतों ने अपनी कार्य-प्रणाली बदली और मांचू सरकार को अपना हथियार बनाने की नीति का फिर दामन पकड़ा। चीनियों द्वारा चीनियों पर शासन करते हुए वे और भी

गहराई से अपने पंजे गडाने लगे। मांचू सरकार और विदेशी ताकतों के हितों में एक हद तक कुछ विरोध भी था। लेकिन १९०१ के बाद मांचू सरकार ने पूर्णतया घुटने टेक दिये और चीनी जनता को दबाने में वह विदेशी ताकतों के हाथ की कठपुतली बन गयी। परिस्थितियां ऐसी थी कि चीन का भाग्य अभी कांटे पर तुल रहा था।

१६११ की क्रान्ति

नयी शती के शुरू होने पर चीन में राष्ट्रीय पूंजीवाद प्रकट हुआ। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उसने डाक्टर सुन यात-सेन और उनके बुर्जुआ क्रान्तिकारी दल के लिए एक आधार का काम किया। १८९८ के सुधार आन्दोलन और बौक्सरों की क्रान्ति की विफलता के बाद यह दल ही मांचू-विरोधी हलचलों का सक्रिय केन्द्र था। १९०५ में, सुन यात-सेन के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने चीनी क्रान्तिकारी लीग का निर्माण किया जो क्वोमिन्तांग का पूर्वरूप थी। इसका निर्माण, एक हद तक, १९०५ की रूसी क्रान्ति के प्रभाव में हुआ था।

यह एक राजनीतिक संगठन था जिसका महत्व राष्ट्रव्यापी था। बुर्जुआ उदारपंथियों, निम्न-बुर्जुआ उग्रपंथियों और 'हान' (मांचुओं से भिन्न) भद्र लोक के उस हिस्से के लिए जो शासनारूढ़ मांचू वंश के खिलाफ़ था, इस संगठन ने एक मिले-जुले संयुक्त मंच का काम किया। इसका लक्ष्य चीन को बुर्जुआ जनवादी गणतंत्र बनाना था। मांचू शासन का तख़्ता पलटने के लिए इसने डट कर क्रान्तिकारी संघर्ष किया।

क्रान्तिकारियों के इस दल ने, कुछ साल तक, अद्‌भुत सफलता प्राप्त की। इसका कारण यह था कि वे, मोटे तौर पर, चीनी जनता की इच्छा और आशा का प्रतिनिधित्व करते थे। १९११ में, चीनी क्रान्तिकारी लीग के नेतृत्व में, हूपे: प्रान्त में वुचांग की सरकारी सेनाओं ने, मांचू सरकार का दामन छोड़ अपने-आप को स्वतंत्र घोषित कर दिया। अन्य प्रान्तों ने भी उनका अनुसरण किया। यही १९११ की सुप्रसिद्ध क्रान्ति थी। फ़रवरी १९१२ में मांचू वंश के अन्तिम सम्राट पू यी ने गद्दी त्याग दी।

चीनी क्रान्तिकारी लीग की गतिविधि का निर्देशन निम्न-बुर्जुआ और बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के हाथ में था। उनके पास जनता का समर्थन था, फिर भी क्रान्ति लाने के बारे में उनकी समझ फ़ौजी मुहिमबाज़ियों और आतंकवादी

कृत्यों तक ही सीमित थी । व्यापक रूप से जनता को एकजुट तथा संगठित करने की दिशा में उन्होंने कोई ख़ास प्रयास नहीं किया । बावजूद इसके कि मांचू सरकार का तख़्ता पलटना और गणतंत्र की स्थापना करना उनके कार्य-क्रम में शामिल था, साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के प्रति उनका दृष्टिकोण समझौते का था । यह सब, असल में, अर्ध-सामन्ती और अर्ध-औपनिवेशिक चीन के पूंजीपति वर्ग की कमज़ोरी का ही प्रतिरूप था। यह ठीक है कि १९११ के क्रान्तिकारियों ने माचू वंश का तख़्ता पलटने में सफलता प्राप्त की और, नाम को ही सही, चीनी गणतंत्र की भी स्थापना की । उन्होंने एक 'अस्थायी संविधान' भी पेश किया जो अन्य बुर्जुआ जनवादी गणतंत्रों के संविधानों के नमूने पर बनाया गया था। लेकिन उनमें इतनी स्थिरता नहीं थी कि अगला डग उठा सकते—साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के खिलाफ़ अन्तिम विजय के लिए संघर्ष कर सकते। और सबसे बुरी बात यह हुई कि उन्होंने उन वैधानिक राजतंत्रवादियों के हमलों से घबरा कर जो किसी प्रकार क्रान्तिकारी कैम्प में घुस आये थे, तथा ज़मींदारों, पदाधिकारियों, साम्राज्यवाद के दलालों और जंगी सरदारों के नेता युआन शिह-काइ के दबाव में आ कर क्रान्ति के लाभों को गंवा दिया । फ़रवरी १९१२ में चीन के अस्थायी राष्ट्रपति सुन यात-सेन को मजबूर हो त्यागपत्र देना पड़ा । युआन शिह-काइ ने उनका स्थान ग्रहण करते हुए, साम्राज्यवाद की मदद से, साम्राज्यवादियों के दलालों का एक सामन्ती शासन कायम किया । १९१६ में उनकी मृत्यु के बाद उस शासन को, जो 'चीनी गणतंत्र की सरकार' कहलाता था, उत्तर के जंगी सरदारों ने जारी रखा और उसके मूल तत्वों में कोई परिवर्तन नहीं आने दिया। इस प्रकार चीन में, वस्तुतः, साम्राज्यवाद और सामन्तवाद का संयुक्त शासन ही कायम रहा।

बावजूद इसके कि १९११ की क्रान्ति विफल रही, उसके ऐतिहासिक महत्व को किसी प्रकार भी कम करना गलत होगा । व्यापक अर्थ में, वह चीन मे बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति की शुरूआत थी जिसने अन्त में सामन्ती राजतंत्रीय शासन का तख़्ता पलटा और जनता की चेतना में जनवादी गणतंत्र की भावना का संचार किया। उसकी विफलता इस बात का प्रमाण थी कि चीन का पूंजीपति वर्ग, जैसा कि अब हम जानते है, इतना समर्थ नहीं था कि साम्राज्य-विरोधी और सामन्त-विरोधी पूंजीवादी क्रान्ति को विजय की ओर ले जा सकता। यह आवश्यक था कि उसका नेतृत्व चीनी मज़दूर वर्ग के हाथ में हो ।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी

पहले विश्व-युद्ध के दौरान में चीन पर साम्राज्यवादियों का दबाव अनिवार्यतः कुछ कम हो गया था। राष्ट्रीय उद्योग में तेज़ी से प्रगति होने के कारण चीनी मज़दूर वर्ग का प्रसार हुआ। उसके बाद, १९१७ में, महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति हुई। चीनी मज़दूरों के लिए उसने प्रकाश-स्तम्भ का काम किया। उन्होंने अब समझा कि चीनी क्रान्ति की विजय का अगर कोई पथ है तो वही जिसे रूसियों ने अपनाया है। १९१९ में चीन में महान चार मई आन्दोलन शुरू हुआ। यह एक क्रान्तिकारी, साम्राज्य-विरोधी और सामन्त-विरोधी आन्दोलन था। इस आन्दोलन में, पहली बार, चीनी मज़दूरों ने अपनी शक्ति का जोहर दिखाया। १९२१ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। यह मज़दूर वर्ग की राजनीतिक पार्टी थी, मार्क्स और लेनिन की शिक्षाएं इसका आधार थीं। इसकी स्थापना के बाद चीनी क्रान्ति ने एक नये दौर में प्रवेश किया।

१९२२ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने दो बुनियादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। ये सिद्धान्त थे—साम्राज्यवाद-विरोध और सामन्तवाद-विरोध। आम जनता में, पहली बार, इन सिद्धान्तों को खुले रूप में रखा गया। १९२३ में पार्टी ने एक संयुक्त क्रान्तिकारी मोर्चा बनाने का निश्चय किया, और क्वोमिन्तांग को फिर से संगठित करने के लिए सुन यात-सेन से अनुरोध किया। सुन यात-सेन ने इसका स्वागत ही नहीं किया, बल्कि १९२४ में क्वोमिन्तांग को फिर से सचमुच संगठित भी किया। उन्होंने अपनी क्रान्तिकारी विचारधारा सान मिन चू यि (तीन जनवादी सिद्धान्तों) को फिर से प्रस्तुत किया, और रूस के साथ मित्रता, कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सहयोग और किसानों तथा मज़दूरों की सहायता की त्रिमूत्री नीति पर अमल करना स्वीकार किया। निम्न-लिखित सिद्धान्तों को उन्होंने अपनी पार्टी के कार्यक्रम में शामिल किया : साम्राज्यवाद का तख्ता पलटना, जंगी सरदारों का तख्ता पलटना, और जमीन उन्हें देना जो उसे जोतते हैं। संयुक्त मोर्चे के बनने, क्वोमिन्तांग को फिर से संगठित करने और आम जनता में कम्युनिस्ट पार्टी के गहरे आन्दोलन के फलस्वरूप, क्रान्ति की लहरें शीघ्र ही फिर हिलोरें लेने लगीं।

लेकिन मार्च १९२५ में चीन के महान क्रान्तिकारी सुन यात-सेन की मृत्यु हो गयी। अपने आदर्शों को वह अपने जीवन में पूरा होते नहीं देख सके। पश्चिमी

तरीकों को अपना कर उन्होंने अपने देश का उद्धार करना चाहा था, पर १९११ की क्रान्ति की विफलता ने उनकी सारी आशाओं को चकनाचूर कर दिया। अक्तूबर क्रान्ति और कम्युनिस्ट पार्टी ने उनमे एक बार फिर आशा का संचार किया। उन्होंने देखा कि पश्चिमी पूंजीवादी देशों का अनुकरण करने से काम नहीं चलेगा, और बिना किसी दुविधा के उन्होंने अपने पुराने विचार को—पूजीवादी देशों का अनुकरण करने के विचार को—छोड़ दिया। उसकी जगह अब उन्होंने रूस से शिक्षा लेने के लिए जनता का आह्वान किया और ज़ोरों से कहा कि "साम्यवाद तीन जनवादी सिद्धान्तों का अच्छा मित्र है।" चालीस वर्ष के क्रान्तिकारी अनुभव से उन्होंने दो नतीजे निकाले: पहला यह कि जनता को जागृत करना ज़रूरी है, और दूसरा यह कि "समान संघर्ष के लिए, दुनिया के उन लोगों से जो हमारे साथ समानता के आधार पर व्यवहार करें, अपने-आप को एकजुट करना ज़रूरी है।" उनकी अजेय और उत्तरोत्तर प्रगतिशील क्रान्तिकारी भावना के लिए, चीनी जनता, उनका सदा सम्मान करती रहेगी।

सुन यात-सेन की मृत्यु के बाद चीनी क्रान्ति का ज़ोर बढ़ता ही गया। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा सुरक्षित और संगठित क्रान्तिकारी सेनाओं ने क्वांगतुग प्रान्त में प्रतिक्रियावादी सेनाओं से लोहा लिया और उनका सफ़ाया किया। १९२६ में उन्होंने उत्तरी अभियान शुरू किया। जनता की मदद से उन्होंने पेइयांग (उत्तरी) जंगी सरदारों की क्रान्ति-विरोधी सेनाओं को बेकार कर दिया। यांगत्ज़ी और पीली नदियों की घाटियों का अधिकांश भाग उनके अधिकार में आ गया। मज़दूरों और किसानों का आन्दोलन समचे राष्ट्र में इस छोर से उस छोर तक फैल गया।

प्रतिक्रान्ति

साम्राज्यवादियों ने जब यह देखा कि जंगी सरदारों की सरकार, जो उनकी लूट-खसोट में छोटे साझीदार का स्थान रखती थी, राष्ट्रव्यापी क्रान्ति की लहर के थपेड़ों से लड़खड़ा रही है, तो उन्होंने नये गुर्गों की खोज में नज़रें दौड़ानी शुरू कीं। आखिर च्यांग काइ-शेक पर उनकी नज़र टिकी। वह क्वो मिन के मिग चुन ('राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सेना') का प्रधान सेनापति था और उन क्रान्ति-विरोधियों का अगुआ था जो क्रान्ति के कैम्प में घुसे, चोरी-चोरी, अपना काम करते थे। मज़दूर और किसान आन्दोलन के बढ़ते हुए असर से घबरा कर, पूंजी-पति वर्ग और ज़मींदार वर्ग भी च्यांग काइ-शेक का खूब समर्थन करने लगे। अप्रैल १९२७ में, ठीक उस समय जब क्रान्तिकारी आन्दोलन की पूर्ण विजय करीब-

करीब निश्चित थी, च्यांग ने क्रान्ति-विरोधी जाल रच शासन पर अधिकार कर लिया और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा क्रान्तिकारी जनता के खिलाफ़ अचानक धावा बोल दिया। प्रथम क्रान्तिकारी गृहयुद्ध इस प्रकार विफल हो गया। जनता के लाभों को, जो उसने क्रान्ति के द्वारा प्राप्त किये थे, बेरहमी से कुचलने के बाद, बड़े-बड़े जमींदारों तथा साम्राज्यवादियों की दलाली पर जीने वाले बड़े-बड़े पूंजीपतियों के सरगना और साम्राज्यवाद के जी-हुजूर चाकर, च्यांग ने एक 'राष्ट्रीय सरकार'——जंगी सरदारों की एक नयी हुकूमत——कायम की और नानकिंग को राजधानी बनाया। इस सरकार ने क्रान्ति पर हमला करने के लिए सभी क्रान्ति-विरोधी शक्तियों को संगठित किया।

१९२७ से चीनी क्रान्ति ने दूसरे क्रान्तिकारी गृहयुद्ध के दौर में प्रवेश किया जो, आम तौर पर, किसान-क्रान्ति का दौर कहलाता है। इस दौर में, कम्युनिस्ट पार्टी ने अत्यन्त कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए जनता का सशस्त्र प्रतिरोध के पथ पर नेतृत्व किया और उसे आगे बढ़ाया। उसने मजदूरों और किसानों की लाल सेना की दाग-बेल डाली। यह जनता की सेना थी जिसने, आगे चल कर, चीनी लोक मुक्ति सेना का रूप धारण किया। इसने बड़े-बड़े क्षेत्रों मे क्रान्तिकारी अड्डे कायम किये और भूमि-सुधार सम्पन्न किया।

च्यांग काइ-शेक एक ओर तो क्रान्ति-विरोधी युद्धों मे फंसा था और दूसरी ओर नये क्वोमिन्तांग के जंगी सरदार एक-दूसरे का गला काटने मे जुटे थे। जापान ने इस स्थिति मे लाभ उठा कर १९३१ में उत्तरपूर्वी चीन पर हमला किया और उसके बाद वह उत्तरी चीन की ओर बढ़ा। राष्ट्र के सिर पर संकट मंडराने लगा। जनता का, खास तौर से मजदूरों, किसानों और छात्रों का जापान-विरोधी आन्दोलन ज़ोरों से बढ़ा। कम्युनिस्ट पार्टी ने बार-बार सुझाव रखा कि आपसी लड़ाई खत्म कर जापान का संयुक्त रूप से मुकाबला किया जाए। लेकिन च्यांग काइ-शेक ने उनके अनुरोध पर ध्यान नही दिया, और सबसे बुरी बात यह कि उसने क्रान्ति के मुख्य केन्द्र क्यांगसी के विरुद्ध, और भी बड़े पैमाने पर, घेरेबन्दी का युद्ध छेड़ दिया।

दीर्घ अभियान

जुलाई १९३४ में चीनी लाल सेना ने एक घोषणा जारी की। इसमें उसने एलान किया कि जापानी हमले का मुकाबला करने के लिए वह उत्तरी अभियान का बीड़ा उठाने जा रही है। इसके तीन महीने बाद वह क्यांगसी से

रवाना हुई, और इस प्रकार सुप्रसिद्ध दीर्घ अभियान आरम्भ हुआ। यह अभियान आठ हज़ार मील लम्बा था। जनवरी १९३५ में, राह में ही, कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने केन्द्रीय राजनीतिक ब्यूरो का एक परिवर्धित सम्मेलन किया। क्वेचो प्रान्त की त्सुन्यी नामक जगह में यह सम्मेलन हुआ। कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व अब तक कुछ 'वामपंथी' अवसरवादियों के हाथ में था। सम्मेलन ने उनका नेतृत्व ख़त्म किया और नये नेतृत्व के हाथों में बागडोर सौंपी। कामरेड माओ त्से-तुग इस नये नेतृत्व का आधार थे। चीनी क्रान्ति ने अब सफलता के पथ पर पांव रखा। अक्तूबर १९३५ में लाल सेना अपनी मंज़िल पर पहुंची—शेन्सी-कान्सु-निंगसिया सीमा प्रदेश में उसने पांव रखा। यहीं च्यांग काइ-शेक की सेनाओं से मुठभेड़ हुई और लाल सेना ने घेराबन्दी करने के उसके इरादे को धूल में मिला दिया। इसके बाद, उत्तरी शेन्सी के येनान को अपनी तीव्र गतिविधियों का केन्द्र बनाकर, कम्युनिस्ट पार्टी ने एक नये संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे का संगठन किया। जापानी हमले का मुकाबला करना इस मोर्चे का लक्ष्य था।

जापान का मुकाबला

९ दिसम्बर १९३५ को पेकिंग में छात्रों ने उत्तरी चीन में जापानी साम्राज्यवाद के प्रसार के विरुद्ध एक भारी प्रदर्शन किया और 'जापान का प्रतिरोध करो', 'अपने देश को बचाओ' जैसे नारे लगाये। जापानी हमले से लोहा लेने के आन्दोलन ने और भी ज़ोर पकड़ा। देखते-देखते वह समूचे देश में फैल गया। मजदूर, किसान, छात्र और जीवन के सभी क्षेत्रों के लोग, जिनमें राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग भी शामिल था, आन्दोलन में खिंच आये। इस आन्दोलन का प्रभाव यहां तक बढ़ा कि दिसम्बर १९३६ में क्वोमिन्तांगी जनरल चांग श्वेह्-ल्याग और यांग हु-चेंग ने, जो कम्युनिस्ट पार्टी के साथ मिलकर जापानी हमले का मुकाबला करने के पक्ष में थे, च्यांग काइ-शेक को बलपूर्वक सियान में बन्दी बना लिया। कम्युनिस्ट पार्टी बीच में पड़ी और अन्त में च्यांग गृहयुद्ध ख़त्म करने और जापान के खिलाफ़ संयुक्त कार्यवाही करने के लिए राज़ी हो गया। इन घटनाओं के कारण चीन की राजनीतिक स्थिति में आमूल परिवर्तन हुआ। क्रान्ति-विरोधी पक्ष की ताकत कमज़ोर पड़ी और जनवादी क्रान्तिकारी कैम्प की शक्ति तथा प्रतिष्ठा को बल मिला। इतना ही नहीं, बल्कि खुद क्रान्ति-विरोधियों, बड़े-बड़े ज़मींदारों और पूंजीपति वर्ग में विभिन्न परस्पर-विरोधी दल उठ खड़े हुए। इसका कारण,

वस्तुत:, उनके समर्थक अमरीकी, ब्रिटिश और जापानी साम्राज्यवादियों के हितों का परस्पर-विरोध था।

७ जुलाई १९३७ को जापानियों ने चीन के लुकाउच्याओ (पेकिंग के निकट मार्कोपोलो पुल) पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण का होना था कि जापानी हमले के खिलाफ़ प्रतिरोधी युद्ध शुरू हो गया। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्र की समूची जनता ने एक स्वर से पूर्ण प्रतिरोध की आवाज़ उठायी। इस स्पष्ट और दो-टूक मांग के सामने च्यांग काइ-शेक को घुटने टेकने पड़े। प्रतिरोध न करने की अपनी विश्वासघातपूर्ण नीति को वह ताक पर रखने के लिए मजबूर हुआ और प्रतिरोधी युद्ध शुरू करने के प्रस्ताव उसे पास करने पड़े। लेकिन, कुछ लड़ाइयों के बाद ही उसने एक नया नुस्खा ढूंढ निकाला: "पहले साम्यवाद का मुकाबला करो, फिर जापानी हमले का प्रतिरोध करो।" उसने अपनी चुनी हुई सेनाओं को कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में संगठित चीनी लोक मुक्ति सेना को घेरने तथा उन अड्डों पर जहां से वह जापानियों के खिलाफ़ लड़ती थी, हमला करने में लगा दिया। दूसरे शब्दों में, प्रतिरोधी युद्ध का सारा बोझ लोक मुक्ति सेना और खुद जनता को सहन करना पड़ा। प्रतिरोधी युद्ध के अन्तिम वर्ष १९४५ में वह चीन में न केवल जापानी सेना के ६९ प्रतिशत सैनिकों से लोहा ले रही थी, बल्कि ९५ प्रतिशत चीनी कठपुतली सैनिकों के भी दांत खट्टे कर रही थी जो वस्तुतः जापान के लिए लड़ रहे थे। लोक मुक्ति सेना ने इन तमाम कठिनाइयों के बावजूद अनेक सफलताएं प्राप्त कीं। उसकी पांतें नित्य बढ़ती और फैलती गयीं और वह कितने ही क्षेत्रों को जापानियों के चंगुल से मुक्त कराने में सफल हुई। इसके बाद, अगस्त १९४५ में, उत्तरपूर्वी चीन में सोवियत सेनाओं का आगमन हुआ और जापान ने बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया।

विजय के बाद समूचे राष्ट्र की जनता ने राष्ट्रीय स्वाधीनता, क्वो-मिन्तांगी तानाशाही की समाप्ति, एक मिली-जुली जनवादी सरकार की स्थापना, जनवादी सुधारों और कृषि-प्रधान राष्ट्र से एक औद्योगिक राष्ट्र के रूप में चीन के कायाकल्प की एक स्वर से मांग की। लेकिन च्यांग काइ-शेक ने अमरीकी साम्राज्यवादियों की मदद से, जो चीन पर अपनी इजारेदारी कायम करने का सपना देख रहे थे, सामरिक महत्व के स्थलों पर जैसे भी हो कब्ज़ा करने का प्रयत्न किया। बातचीत तथा समझौते की ओट में, वह गृहयुद्ध की सक्रिय तैयारियां करने लगा। वह १९२७ वाली अपनी चाल को फिर दोह-

राना चाहता था। अपनी फ़ासिस्ट तानाशाही को कायम रखना और चीन को एक अमरीकी उपनिवेश बना देना उसका लक्ष्य था। जुलाई १९४६ में, अपनी समझ के अनुसार सभी आवश्यक तैयारियां कर लेने के बाद, समूची शक्ति से वह उन्मुक्त इलाकों पर टूट पड़ा। चीनी क्रान्ति ने अब तीसरे क्रान्तिकारी गृहयुद्ध के दौर में प्रवेश किया।

लेकिन १९४६ का चीन १९२७ का चीन नहीं रहा था। चीनी जनता क्रान्तिकारी संघर्ष के प्रचुर अनुभव से सुसज्जित थी। उसके पास अपनी सशस्त्र सेना––लोक मुक्ति सेना––और अपने क्रान्तिकारी अड्डे––उन्मुक्त इलाके थे। कम्युनिस्ट पार्टी, जो चीनी क्रान्ति की नेता थी, एक बड़ी और मज़बूत पार्टी बन चुकी थी। जुलाई १९४७ तक लोक मुक्ति सेना ने बचाव के युद्ध से पलट कर हमले का युद्ध शुरू कर दिया। इस प्रकार, चीनी जनता के क्रान्तिकारी युद्ध ने एक नया मोड़ लिया। यह मोड़, जैसा कि अध्यक्ष माओ ने अपनी रचना 'वर्तमान परिस्थिति और हमारा कर्तव्य' में बताया है : "सौ साल से भी अधिक से चीन में फैल रहे साम्राज्यवाद के शासन और उसके अस्त के बीच का मोड़ था।" शीघ्र विजय के लक्षण चारों ओर प्रकट हो रहे थे, हर चीज़ उसी की ओर इंगित करती थी। अप्रैल १९४९ में नानकिंग मुक्त किया गया। च्यांग काइ-शेक के शासन का––चीनी इतिहास की अन्तिम, सबसे भ्रष्ट, प्रतिक्रियावादी और गद्दार सरकार का ख़ात्मा हो गया।

विजय

पहली अक्तूबर १९४९ के दिन अध्यक्ष माओ त्जे-तुंग ने चीनी लोक गणतंत्र की स्थापना की विधिपूर्वक घोषणा की। चीनी लोक गणतंत्र की स्थापना चीनी जनता की साम्राज्य-विरोधी और सामन्त-विरोधी क्रान्ति की विजय का मूर्त रूप थी; वह सुखी और सम्पन्न समाजवादी समाज की एक पूर्व सूचना थी। जैसा कि अध्यक्ष माओ ने चीनी लोक राजनीतिक सलाहकार सम्मेलन में दिये गये अपने उद्घाटन-भाषण में कहा था : "चीनी जनता, मानव जाति का एक चौथाई भाग अब उठ खड़ा हुआ है।"

सौ साल से भी अधिक तक चीनी जनता साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के दुहैरे जुए के बोझ को सहन करती रही। अनगिनत क्रान्तिकारी संघर्षों में वह जूझी। लेकिन, अफ़ीम-युद्ध से लेकर १९११ की क्रान्ति तक, हर बार, उसे हार का सामना करना पड़ा। इतिहास ने असंदिग्ध रूप से यह दिखा दिया कि

साम्राज्यवाद के उत्पीड़न से त्रस्त अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध-सामन्ती चीन में किसान वर्ग या पूंजीपति वर्ग, दोनों में से किसी के लिए भी क्रान्ति को विजयी बनाना असम्भव था, बुर्जुआ गणतंत्र की स्थापना करना असम्भव था, और पूंजीवादी पथ पर चलना असम्भव था। इतिहास ने यह भी दिखाया कि साम्राज्यवाद और सामन्तवाद को केवल चीनी मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में ही हमेशा के लिए खत्म किया जा सकता था—उस मज़दूर वर्ग के नेतृत्व मे जिसकी अगुआ मार्क्सवाद-लेनिनवाद के पथ पर चलने वाली कम्युनिस्ट पार्टी थी। और केवल अब, विजय के बाद ही, चीन, जो मज़दूर वर्ग के नेतृत्व से युक्त तथा मज़दूरों और किसानों के सहयोग पर आधारित एक लोक जनवादी राज्य है, समाजवाद की ओर—अपने अनिवार्य लक्ष्य की ओर—बढ़ सकता है। यही वह चीज़ है जो चीनी जनता के पिछले सौ वर्ष के क्रान्तिकारी संघर्ष के इतिहास ने हमें सिखायी है।

('पीपुल्स चायना' अंक २, १९५५)

ताइपिंग क्रान्ति

श्ये शिग-यास्रो*

ताइपिंग क्रान्ति (१८५१-१८६४) चीन की, उन्नीसवीं शताब्दी की, किसानों की सब से बड़ी क्रान्तिकारी लड़ाई थी। इन चौदह वर्षों में ताइपिंग के ोर किसानों ने अपने राज्य की नींव डाली, एक विशाल सेना का निर्माण किया, नेक क्रान्तिकारी सुधार प्रचलित किये और भूमि की सामन्तवादी आर्थिक यवस्था को उलटने के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया। यह एक ऐसा आदर्श ा जो किसानों को अत्यन्त प्रिय था, अतः वे लाखों की संख्या में क्रान्तिकारी नाओं में भरती होने लगे। अनेक कठिनाइयों के बावजूद वे अन्त तक लड़ते हे। उनके शौर्य और साहस की गाथा चीनी जनता के स्वतंत्रता और मुक्ति-ंग्राम के इतिहास का एक स्वर्ण पृष्ठ है।

बढ़ता हुआ तूफ़ान

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, जब पश्चिम में पूंजीवाद का तेज़ी से वेकास हो रहा था, चीन के सामन्तवादी समाज पर एक नया संकट घिरने लगा। ीन की अस्सी प्रतिशत भूमि पर मुट्ठी भर जमींदारों का प्रभुत्व था। किसान एक तरफ़ लगान और टैक्सों के बोझ तले दबे जा रहे थे, दूसरी तरफ़ उन्हें अधिकारियों, व्यापारियों और धन-लोलुप महाजनों के शोषण का भी शिकार होना पड़ता था। किसानों की एक बड़ी संख्या को अपनी भूमि छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा था और वे अपना पेट पालने के लिए दर-दर की ठोकरें खाते फिरते थे। इसके अलावा, भ्रष्टाचारी मांचू सरकार अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग जनता के तनिक से भी विद्रोह को निर्दयता से कुचल डालने के लिए करती थी। उसकी इस जोर-ज़ुल्म की नीति से समूचा राष्ट्र उत्पीड़ित था। निरीह और निर्दोष लोगों को विद्रोह फैलाने का झूठा इलज़ाम लगा गिरफ़्तार कर लिया जाता था और मौत के घाट उतार दिया जाता था।

उधर, ब्रिटेन मांचू सरकार को अफीम आयात करने के लिए बाध्य करना चाहता था ताकि खूब मुनाफ़ा कमाया जा सके। इसलिए १८४० में उसने चीन के विरुद्ध प्रथम अफ़ीम-युद्ध छेड़ दिया। ब्रिटिश आक्रमणकारियों और उनके

*** लेखक एक इतिहासवेत्ता हैं जिन्होंने ताइपिंग क्रान्ति का विशिष्ट अध्ययन किया है। यह आजकल पेकिंग के 'पीपुल्स डेली' पत्र में काम करते हैं।**

जंगी जहाज़ों के सामने मांचू सरकार की सिट्टी गुम हो गयी। वह नहीं चाहती थी कि आक्रमणकारियों का विरोध करने के लिए जनता को संगठित किया जाए। साथ ही उसने लिन त्से-शु के, जो 'हान' (चीनी) ज़मींदारों के अधिक जागरूक पक्ष का प्रतिनिधि था, इस प्रस्ताव पर भी ध्यान नहीं दिया कि आक्रमणकारियों का प्रतिरोध किया जाए। इस तरह उसके पास आत्म-समर्पण के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। नानकिंग समझौते की शर्तों के अनुसार चीन को कैण्टन, फ़ूचो, अमोय, निंगपो और शंघाई की बन्दरगाहों को खोलना पड़ा। यह उन अनेक समझौतों में से पहला था जो विदेशी शक्तियों ने चीन पर थोपे और जो चीन के हितों के लिए घातक सिद्ध हुए। चीन सरकार से चीन में आनेवाली वस्तुओं पर आयात-कर लगाने का अधिकार छीन लिया गया। चीन को हांगकांग से हाथ धोना पड़ा और उस पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। चीन को २१० लाख चांदी के युआन हर्जाने के रूप में ब्रिटेन को देने पड़े। मांचू सरकार उन व्यक्तियों के विरुद्ध भी कोई कार्यवाही नही कर सकती थी जो चोरी-छिपे चीन में अफ़ीम का व्यापार करते थे। नानकिंग समझौते से शह पाकर अमरीका और फ्रांस भी मैदान में कूद पड़े और चीन सरकार को उनके संग भी असमान समझौते करने पड़े।

पश्चिम के पूजीवादी देशों ने अपने जंगी जहाज़ों से चीन सरकार को मजबूर कर दिया कि वह अपने देश में उनको व्यापार के लिए खुली छूट दे। चीन को अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध-सामन्ती देश बनाने की दिशा में यह उनका पहला कदम था। विदेशी पूंजीवाद धीरे-धीरे चीन में अपना जाल फैलाने लगा। १८४२ से १८४५ तक ब्रिटेन से आने वाले कपड़े का आयात चीन में तिगने से भी अधिक हो गया। देश के कुछ भागों मे विदेशी वस्तुओं के आयात ने उस प्राकृतिक अर्थ-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया जो खेती-बाड़ी और दस्तकारी पर आधारित थी और अब तक आत्म-निर्भर थी। किन्तु जो बात देश के लिए सबसे अधिक हानिप्रद सिद्ध हुई, वह यह थी कि चीन में अफ़ीम का आयात दिन पर दिन बढ़ने लगा जिसके परिणाम-स्वरूप चीन से चांदी बाहर जाने लगी। उदाहरणार्थ १८४८ में ४६,००० चैस्ट अफ़ीम का आयात हुआ जिसका मूल्य १८० लाख तायल था। चांदी के बाहर जाने से उसका मूल्य तेजी से बढ़ने लगा। अफ़ीम-युद्ध से पहले कोई१२५ पौंड चावल तीन तायल में बिकता था। १८५० में उतने चावल की कीमत केवल डेढ़ तायल रह गयी।

सरकारी टैक्स केवल चांदी में ही लिये जाते थे, इसलिए किसानों पर उनका बोझ पहले की अपेक्षा दुगने से भी अधिक हो गया। मांचू सरकार को

धन की आवश्यकता थी, क्योंकि उसे हर्जाने की एक बड़ी रकम चुकानी पड़ती थी। अफ़ीम के आयात से व्यापार में जो बराबर हानि हो रही थी उसे पूरा करने के लिए भी चीन सरकार को रुपये की ज़रूरत थी। मांचू सरकार इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति केवल टैक्स बढ़ा कर ही कर सकती थी जिसका बोझ अनिवार्यतः किसानों पर पड़ता था। छोटे और मध्यवर्गीय किसानों की अधिकाधिक संख्या दिवालिया होती गयी और वे कर्ज़ न चुका सकने के कारण, पुलिस के भय से, अपने घर छोड़-छोड़ कर भागने लगे।

देश भर में सुलगती किसान-संघर्ष की ज्वाला इन विकट परिस्थितियों में और भी भड़कने लगी। आंकड़ों के अनुसार, अफ़ीम-युद्ध के बाद दस वर्ष में चीन में जनता के एक सौ दस विद्रोह हुए। इनके अलावा भी कई विद्रोह हुए होंगे जिनके आंकड़े उपलब्ध नहीं। इन संघर्षों में केवल 'हान' (चीनी) जाति के लोगों ने ही नहीं, बल्कि क्वांगतुंग, क्वांगसी, हुनान, हूपेः युन्नान, शान्तुंग, क्यांगसु और अन्य प्रान्तों में बसी, हुइ, म्याओ और याओ जातियों ने भी सक्रिय भाग लिया।

ताइपिंग क्रान्ति से ठीक पहले चीन ऐसे तूफ़ानी दौर से गुज़र रहा था जो चीन के इतिहास में अपूर्व था। सामन्ती समाज की जड़ें हिलने लगी थीं और विदेशी पूंजीपति अपने आक्रमणकारी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सामन्ती शासक वर्गों के संग सांठ-गांठ करने में व्यस्त थे। चीन में विदेशी पूंजीवाद के हस्तक्षेप से सामन्ती वर्गों और किसानों के बीच संघर्ष और भी गहरा और तीव्र हो गया। यही कारण है कि चीनी जनता ने अपना क्रान्तिकारी संघर्ष सबसे पहले मुख्यतया सामन्ती मांचू सरकार के विरुद्ध ही चलाया। अभी तक चीन में सर्वहारा और पूंजीपति नये वर्गों के रूप में विकसित नहीं हुए थे और ताइपिंग क्रान्ति, जैसा कि आवश्यक था, विशुद्ध रूप से किसानों की क्रान्तिकारी लड़ाई थी।

क्रान्ति का आरम्भ

ताइपिंग क्रान्ति के नेता हुंग श्यु-चुआन का जन्म क्वांगतुंग प्रान्त के हुआ· श्येन में एक मध्यवर्गीय किसान परिवार में हुआ था। शुरू में वह एक गरीब स्कूल-मास्टर थे। अफ़ीम और अन्य विदेशी वस्तुओं का आयात क्वांगतुंग में अन्य स्थानों से भी पहले होने लगा था जिससे उसकी आर्थिक व्यवस्था को काफ़ी धक्का लगा था। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि क्वांगतुंग की जनता ने ही सबसे पहले विदेशी आक्रमण के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया। अफ़ीम-युद्ध के ज़माने में ही उसने ब्रिटेन की आक्रमणकारी कार्यवाहियों का

विरोध करने के लिए अपने 'पिंग यिंग तुआन' (ब्रिटिश लीग का नाश हो) और 'शेंग पिंग शे श्वे:' (आत्म-रक्षा समिति) संगठन स्थापित कर लिये थे। युद्ध की समाप्ति पर, क्वांगतुंग की जनता ने सामन्ती शोषण और उत्पीड़न व विदेशी पूंजीपतियों की लूट-खसोट से तंग आकर मांचू राज्य के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया। हुंग श्यु-चुआन और उनके साथी भी, जैसा कि स्वाभाविक था, इस आन्दोलन में शामिल हो गये।

चीन के दूसरे किसान-विद्रोहों की तरह ताइपिंग क्रान्ति में भी धर्म का रंग था। ताइपिंग नेताओं ने धर्म का सहारा लेकर लोगों को संगठित किया, उनके साहस को उभारा और उन्हें उनकी आर्थिक और राजनीतिक मांगों की पूर्ति के लिए संघर्ष करने को प्रेरित किया। भूमि प्राप्त करना, सामन्तवादी मांचू शासन को समाप्त करना और एक स्वतंत्र लोक राज्य स्थापित करना——ये कुछ ऐसे उद्देश्य थे जिनसे प्रभावित हो किसानों की एक बड़ी संख्या सशस्त्र आन्दोलन में भाग लेने लगी।

१८३० में हुंग श्यु-चुआन और उनके मित्र फ़ेंग युन-शान (वह भी एक गांव के स्कूल-मास्टर थे) कैण्टन में ईसाई धर्म से परिचित हो गये थे। उनका विश्वास था कि ईसाई धर्म का यह सीधा-सादा प्राथमिक सिद्धान्त कि "सब लोग ईश्वर के पुत्र हैं और उसकी दृष्टि में बराबर हैं" चीन के इस प्राचीन आदर्श के संग जोड़ देना चाहिए कि "न्याय की सदा जय हो, सर्वत्र शान्ति और समता का प्रसार हो।" उनके विचार में ये दोनों सिद्धान्त जनता को क्रान्तिकारी संघर्ष में शामिल होने के लिए प्रेरित कर सकते थे। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने 'ईश्वरोपासना समाज' का निर्माण किया। उन्होंने एक 'मुक्ति-गीत' तैयार किया। अपने विचारों को सहजगम्य बनाने के लिए उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं जैसे कि 'हमारी पीढ़ी की जागृति के लिए एक शुभ संदेश' और 'हमारे युग का धर्म'।

उन्होंने क्वांगतुंग की सीमा से लगे दक्षिणपूर्वी क्वांगसी के पहाड़ी प्रदेश को क्रान्तिकारी आन्दोलन आरम्भ करने के लिए अपना अड्डा बनाया। उन्होंने उस स्थान को इसलिए चुना क्योंकि क्वांगतुंग से भागे हुए बहुत से लोग वहां शरणार्थी बन कर रह रहे थे जिनकी सहायता पर क्रान्ति की आधार-शिला निर्मित हो सकती थी। उसी समय, क्वांगसी के अनेक स्थानों में जनता मांचू सरकार के विरुद्ध स्वयं विद्रोह कर रही थी। उस सुदूर सीमा प्रान्त के आवागमन के साधन बहुत ही टूटी-फूटी अवस्था में थे जिससे मांचू सरकार का दबदबा वहां अपेक्षाकृत कम था। इसलिए

क्रान्तिकारी आन्दोलन को संगठित करने के लिए क्वांगसी से बेहतर किसी और स्थान का मिलना असंभव था।

१८४७ में 'समाज' ने अपने मूल नियम तैयार किये और क्वांगसी प्रान्त की कुएपिंग काउण्टी में त्जुचिंग पर्वत पर अपना मुख्य अड्डा स्थापित किया। 'समाज' के उद्देश्य जनता की इच्छाओं से मेल खाते थे इसलिए 'समाज' को प्रगति करने में देर नहीं लगी और धीरे-धीरे वह एक शक्तिशाली क्रान्तिकारी संगठन बन गया।

दूसरी ओर, हुंग श्यु-चुआन और फ़ेंग युन-शान ने ताइपिंग क्रान्ति का नेतृत्व करने के लिए अपने आस-पास अपने ही जैसे व्यक्तियों का एक दल एकत्रित कर लिया। उनमें से कुछ मुख्य व्यक्ति ये थे : कोयला जलाने वाला मज़दूर यांग श्यु-चिंग; एक दिवालिया किसान श्याओ चाओ-कुए; वे चांग-हुइ--एक ऐसा ज़मींदार जिसके भ्रम नष्ट हो चुके थे; और एक अमीर ज़मींदार शिह ता-काइ। उन सब ने इस सिद्धान्त का प्रचार किया कि "अमीरों से धन लेकर गरीबों की सहायता करो" और मांचू राज्य के विरुद्ध कई नारे तैयार किये। 'समाज' के सदस्यों और उन सशस्त्र सैनिकों के बीच जिन्हें ज़मींदारों ने 'समाज' का दमन करने के लिए भेजा था, अब और भी जल्दी-जल्दी और तीव्र झपटें होने लगीं।

फिर १८४९ में क्वांगसी में एक अकाल पड़ा। जनता का असंतोष पराकाष्ठा तक पहुंच गया। केन्द्रीय सरकार के विरूद्ध जनता का संघर्ष सारे प्रान्त में आग की तरह फैल गया। 'उपासना समाज' अपना कर्तव्य निभाने के लिए तुरन्त कटिबद्ध हो गया। जुलाई १८५० में, हुंग श्यु-चुआन ने सभी भागों में फैले 'समाज' के सदस्यों को आदेश दिया कि वे जत्थाबन्द हों और त्जुचिंग पर्वत पर चिनत्येन गांव में इकट्ठे हो जाएं। उन्हें यह सलाह दी गयी कि वे अपने घरों को जला दें और अपने संग अपने परिवार के सब सदस्यों को भी क्रान्ति में भाग लेने के लिए ले आएं। उनके खाने और कपड़े की व्यवस्था सामूहिक खज़ाने से की जाएगी।

लोगों ने बड़ी संख्या में इस आह्वान का ज़बर्दस्त स्वागत किया। दस हज़ार से अधिक लोग निर्दिष्ट स्थान की ओर चल पड़े। उनमें अधिकतर तो किसान थे, पर साथ ही कोयला फूंकने वाले मज़दूर, सिपाही, थके-हारे लोग, शहरों के निर्धन और बेकार भी शामिल थे। नयी ताइपिंग सेना का प्रमुख भाग ऐसे ही लोगों से बना था। दिसम्बर में ताइपिंग सेना ने मांचू सरकार के सैनिक

दस्तों को करारी हार दी। अपनी विजय से क्रान्ति की सफलता में उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया।

११ जनवरी १८५१ को, जो हुंग श्यु-चुआन का जन्म-दिन था, ताइपिंग क्रान्ति की बाक़ायदा घोषणा कर दी गयी। इस तरह एक ऐसी क्रान्ति आरम्भ हुई जिसकी गणना इतिहास की सब से बड़ी क्रान्तियों में की जाती है।

क्रान्ति का प्रसार

ताइपिंग सेना उत्तर की ओर बढ़ने लगी। सितम्बर १८५१ में उत्तर-पूर्वी क्वांगसी में युंगान (जो आजकल मेंगशानश्येन कहलाता है) के महत्व-पूर्ण शहर पर अधिकार कर लिया गया। वहां ताइ पिंग त्येन क्वो (शान्ति का दिव्य राज्य, जिसे कभी-कभी ताइपिंग का स्वर्गीय राज्य भी कहते हैं) की स्थापना हुई। सर्व-सम्मानित हुंग श्यु-चुआन को त्येन वांग (दिव्य नरेश) की उपाधि से सुशोभित किया गया। फ़ंग युन-शान को, जो आन्दोलन की नींव डालने वालों में से थे, और उन पूर्वोक्त व्यक्तियों को जो बाद में आन्दोलन में शामिल हुए थे, युवराज की पदवी से सम्मानित किया गया। हुंग ता-चुआन को, जो मांचू-विरोधी 'स्वर्ग और पृथ्वी समाज' के नेता थे और जिन्होंने क्रान्ति में भाग लिया था, त्येन तेह्-वांग (दिव्य गुणों के युवराज) की उपाधि दी गयी। क्रान्ति के सबसे महत्वपूर्ण नेताओं में कोयला जलाने वाले यांग श्यु-चिंग का नाम उल्लेखनीय है।

'दिव्य राज्य' की घोषणा कोई थोथी, अर्थहीन कार्यवाही न थी। इस राज्य ने तुरन्त विविध राजनीतिक और सैनिक व्यवस्थाएं स्थापित कीं और साथ ही देश की जनता से यह अपील की कि वह मांचू सरकार के विरुद्ध खड़ी हो जाए।

युंगान में छः महीने ठहरने के बाद ताइपिंग सेना फिर आगे बढ़ चली। शहरों पर अपना अधिकार जमाती हुई और नये शहरों को जीतने के लिए उन्हें छोड़ती हुई, ताइपिंग सेना आगे बढ़ती गयी। अप्रैल १८५२ में वह हुनान प्रान्त में दाखिल हुई। मांचू सरकार की ओर से क्रान्ति को दबाने के लिए एक विशाल सेना भेजी गयी, किन्तु वह ताइपिग सेना की प्रगति को रोकने में असमर्थ रही। ताइपिंग सेना जब उत्तर की ओर बढ़ी तो वह केवल क्वेलिन और चांगशा की रक्षा कर सकी जो क्रमशः क्वांगसी और हुनान प्रान्तों की राजधानियां थीं।

योचो (हुनान) में, ताइपिंग सेना ने मांचू राज्य के शस्त्रागार पर कब्ज़ा कर लिया जो बन्दूकों और तोपों से भरा था। इससे मांचू सेना की आक्रमण-शक्ति काफ़ी कमज़ोर पड़ गयी। जनवरी १८५३ में ताइपिंग सेना ने यांगत्ज़ी घाटी के महत्वपूर्ण शहर वुहान पर अधिकार कर लिया।

अगले महीने ताइपिंग सेना ने वुहान खाली कर नदी के किनारे-किनारे पूर्व की ओर दो भागों में बढ़ना आरम्भ कर दिया। सेना का एक भाग नदी की राह आगे बढ़ा और दूसरे भाग ने भूमि पर अपनी प्रगति जारी रखी। रास्ते में जहां कहीं भी मांचू फ़ौजी दस्तों से मुठभेड़ हुई, उनका कचूमर निकाल दिया गया। मार्च के मध्य में उन्होंने नानकिंग पर अधिकार कर लिया और उसका नाम बदल कर त्येनकिंग (दिव्य राजधानी) रख दिया और उसे 'दिव्य राज्य' की राजधानी बना दिया।

ताइपिंग सेना न केवल अपने साहस और शौर्य के लिए प्रसिद्ध थी, बल्कि उसके अनुशासन और नागरिकों के प्रति सद्व्यवहार ने भी उसे लोकप्रिय बना दिया था। जिन शहरों और गांवों पर उसका अधिकार होता था, वहां के किसान और गरीब लोग दिल खोल कर उसका स्वागत करते थे। उसने सरकारी अन्न-भण्डार और खज़ाने निर्धन लोगों की सहायता के लिए खोल दिये और भ्रष्टाचारी अधिकारियों, ज़मींदारों और स्थानीय गुण्डों को, जो अपराध करते हुए पकड़े गये थे और जिनसे जनता घृणा करती थी, फांसी की सज़ा दी। दिन पर दिन ताइपिंग सेना में नये लोग भरती होते जाते थे, और जब नानकिंग पर उसका अधिकार हुआ तो उसमें सैनिकों की संख्या दस लाख तक पहुंच गयी। इन सब बातों से यह चीज़ अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि किसलिए ताइपिंग सेना इतनी शीघ्र विजय प्राप्त कर सकी।

क्रान्ति के आरम्भ में ताइपिंग सेना को जो गौरवपूर्ण सफलताएं प्राप्त हुई, उनसे समूचे देश की जनता में उत्साह और आशा की एक लहर दौड़ गयी। उत्तर में पीली नदी की घाटी से लेकर दक्षिण में क्वांगतुंग और फ़ुक्येन के तटवर्ती प्रदेशों तक अनेक स्थानों में सशस्त्र विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी।

नानकिंग को अपनी राजधानी बना कर 'दिव्य राज्य' ने उत्तर और पश्चिम की ओर दो सेनाएं भेजीं। उत्तर की ओर बढ़ने वाली सेना आन्हवे और होनान होती हुई होपे में दाख़िल हो गयी। इससे मांचू राज्य की राजधानी पेकिंग के लिए खतरा बढ़ गया। किन्तु यहां पर ताइपिंग नेता युद्ध-संचालन के दांव-पेचों में गलती कर बैठे जिससे वे अपनी जीतों से पूरा लाभ नहीं उठा सके और पूरी शक्ति से पेकिंग पर सीधा आक्रमण नहीं कर सके। उत्तर की

ओर बढ़ने वाली सेना को पीछे से सैनिक सहायता प्राप्त नहीं हुई और वह तेज़ी से शत्रु-प्रदेश के भीतर घुसती चली गयी। टेंटशिन पर उसका आक्रमण असफल रहा और उसे शान्तुंग और होपे के सीमा प्रान्तों की ओर पीछे हटना पड़ा जहां मांचू सेनाओं ने उसे चारों ओर से घेर कर नष्ट कर दिया। नानकिंग से जो सेना सहायता के लिए शान्तुग भेजी गयी थी, वह उत्तर की ओर बढ़ने वाली सेना से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकी। यह वज्रपात १८५५ के प्रारम्भ में हुआ-- दो वर्ष के वीरतापूर्ण अभियान के बाद।

ताइपिंग सेना का वह भाग जो पश्चिम की ओर बढ़ा था, कई वर्ष तक ज़मींदारों के सैनिक जत्थों से भयंकर लड़ाई में उलझा रहा। उन्हें एक बहुत ही बदनाम अधिकारी और ज़मींदार त्सेग कुओ-फ़ान ने संगठित किया था। ताइपिंग सेना का उद्देश्य आनकिग, कियुकियांग और वुहान पर कब्ज़ा करना था, क्योंकि सैनिक दृष्टि से इनका बड़ा महत्व था। १८५५ में इन तीनों शहरों के संग क्यांगसी के पूरे प्रान्त पर और यांगत्ज़ी के सहारे आन्हवे और हूपे: के कुछ भागों पर ताइपिग सेना का अधिकार हो गया। नानचांग शहर की फ़सीलों में त्सेंग कुओ-फ़ान चारों ओर से घिर गया।

नानकिग पर ताइपिंग सेना का अधिकार हो जाने के बाद मांचू सरकार ने उत्तर और दक्षिण से नानकिंग को घेरने के लिए विशाल सेनाएं भेजीं। किन्तु दोनों ओर की आक्रमणकारी सेनाओं को पराजित कर पीछे खदेड़ दिया गया। इस तरह, बावजूद इसके कि ताइपिग की उत्तरी सेना को भारी नुकसान पहुंचा था, १८५६ के शुरू में ताइपिंग सेना के लिए क्रान्ति की परिस्थितियां कुल मिला कर अनुकूल थीं।

किन्तु कमज़ोरी का असली कारण तो वे व्यक्तिगत झगड़े थे जो कई ताइपिंग नेताओं में आपस में चल रहे थे। अगस्त १८५६ में उनके आपसी झगड़ों ने उनकी एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया। ताइपिंग के सात नेताओं में से, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, तीन---हुंग ता-चुआन, फ़ेंग युन-शान और श्याओ चाओ-कुए शत्रु के हाथों मारे जा चुके थे या क्रान्ति के शुरू के दौर में लड़ाई में काम आ चुके थे। नानकिंग 'दिव्य राज्य' की राजधानी बन जाने के बाद, बाकी के चार नेताओं में सत्ता हस्तगत करने के लिए आपस में खूब छीना-झपटी होने लगी। परिणाम यह हुआ कि पहले यांग श्यु-चिंग और बाद में वे चांग-हुइ को मौत के घाट उतार दिया गया। उनके संग बहुत से दूसरे पुराने क्रान्तिकारी नेताओं को भी मार दिया गया। उधर शिह ता-काइ को जब यह मालूम हुआ कि हुंग श्यु-चुआन उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखने

और उनसे डाह करने लगे हैं तो वह अपने साथियों के संग क्वांगसी वापस लौट गये और लड़ते-भिड़ते शेचुआन में दाख़िल हो गये।

इन सब बातों से क्रान्तिकारी संगठन को गहरा धक्का लगा। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि शीघ्र ही युद्ध-स्थिति पर भी गहरा संकट छाने लगा। वुहान और कियुकियांग, जो यांगत्जी के मध्य क्षेत्र में स्थित थे और सैनिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण शहर थे, कुछ अन्य स्थानों के संग मांचू राज्य के हाथ में चले गये।

लेकिन इसके बावजूद ताइपिंग क्रान्ति में शक्ति और प्राण दोनों ही मौजूद थे। अगस्त १८५६ के बाद ताइपिंग सेना, रण-नीति में पारंगत दो महान सेनापतियों---चेन यू-चेंग और लि श्यु-चेंग के नेतृत्व में, यांगत्ज़ी के सहारे आन्हवे के कुछ भागों की रक्षा के लिए मांचू राज्य के विरुद्ध संघर्ष करती रही। साथ ही उसने चेकियांग और क्यांगसु में दाखिल हो कर यांगत्ज़ी नदी के मुहाने के समृद्ध क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया। उसी समय देश के बहुत से भागों में ताइपिंग के आदर्शों पर अन्य शक्तियां भी सशस्त्र विद्रोह कर रही थीं। पीली नदी की घाटी में, जो उत्तर में मांचू-विरोधी आन्दोलन का मुख्य केन्द्र थी, नियेन सेना का सशस्त्र विद्रोह तो खास तौर पर इसी तरह का था।

वास्तव में ताइपिग सेना की शक्ति उस समय तक नष्ट नहीं हुई थी और उसके लिए विजय प्राप्त करना शायद असंभव नहीं था। किन्तु जब चीन की प्रतिक्रियावादी शक्तियां विदेशी आक्रमणकारियों के संग सांठ-गांठ कर निरन्तर हमले करने लगी तो ताइपिंग क्रान्ति का अन्त स्पष्ट दिखायी देने लगा।

१८५३ में ताइपिग के 'दिव्य-राज्य' का क्रान्तिकारी प्रभाव यांगत्ज़ी घाटी में चारों ओर फैलने लगा था। पूंजीवादी राष्ट्रों में इससे एक आतंक सा छा गया क्योंकि उन्हें डर था कि क्रान्ति के फैलने से चीन में उनके हितों और विशेषाधिकारों पर आच आएगी। कुछ समय तो वे अपने व्यवहार में काफ़ी सतर्क और सावधान रहे। यूरोप पर क्रीमिया युद्ध के बादल मंडराने लगे थे और ब्रिटेन, फ्रांस और ज़ारशाही रूस में से कोई भी अपने को सुदूर पूर्व की लड़ाई में नहीं फंसाना चाहता था। यद्यपि ब्रिटेन चीन में अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए चिन्तित था, किन्तु उसने भी तटस्थ रहने का अभिनय करना आवश्यक समझा। विदेशियों के प्रति ताइपिंग राज्य के रुख़ का पता लगाने के लिए ब्रिटेन ने सर जॉर्ज बोनहम को, जो मांचू दरबार में ब्रिटिश

राजदूत थे, एक जंगी जहाज़ के संग नानकिंग भेजा। किन्तु ताइपिंग सरकार ने बोनहम से मिलना स्वीकार नहीं किया।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर ताइपिंग राज्य के विचार स्पष्ट थे। वह मित्रता और बराबरी का पक्षपाती था। हुंग श्यु-चुआन ने एक बार कहा था, "मातृ-भूमि के स्वाधीन हो जाने के बाद हम विदेशियों की सम्पत्ति बिना कोई नुकसान किये उन्हें सौंप देंगे। चीन दूसरे देशों के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करेगा; ज्ञान और सत्य की खोज में उनके संग मिल-जुल कर काम करेगा और दूसरों के प्रति उसका व्यवहार शिष्ट और सद्भावनापूर्ण होगा।" स्वतंत्रता और राष्ट्रों के बीच समता : संक्षेप मे यही उनकी वैदेशिक नीति थी। 'दिव्य-राज्य' इस सिद्धान्त का समर्थन करता था कि देशों के बीच बिना किसी रोक-टोक के खुला व्यापार होना चाहिए। उसकी ओर से इस बात पर भी ज़ोर डाला गया कि चीन को आयात-निर्यात कर लगाने का अपना अधिकार फिर से प्राप्त होना चाहिए और वे समझौते रद्द होने चाहिएं जिनके द्वारा चीन से उसका यह अधिकार छीन लिया गया है। इसीके संग यह माग भी की गयी कि जो देश चीन के संग व्यापार कर रहे है, उनके व्यापारियों को राज्य के कर-सम्बन्धी नियम कड़ाई के साथ पालन करने चाहिएं। अफ़ीम का आयात निषिद्ध कर दिया गया। उन स्थानों में जहां ताइपिंग सेना का अधिकार स्थापित हो गया था, अफ़ीम के सेवन पर कड़ी पाबन्दी लगा दी गयी।

साम्राज्यवादियों द्वारा हस्तक्षेप

विदेशी आक्रमणकारियों को ताइपिंग राज्य की ऐसी नीतियां खटकती थीं क्योंकि वे चीन को अपना उपनिवेश बनाने पर तुले थे। खास कर अफ़ीम के आयात पर जो पाबन्दी लगायी गयी थी, उससे ब्रिटेन के व्यापार को गहरा धक्का पहुंच रहा था। अफ़ीम ब्रिटेन की मुख्य निर्यात-वस्तु थी जिसको बेचने से ब्रिटिश और भारतीय कोष को बहुत लाभ पहुंचता था।

किन्तु वास्तविकता यह थी कि 'तटस्थता' के इस दौर में भी ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका क्रान्ति के विरुद्ध मांचू राज्य के संग गठ-जोड़ कर रहे थे। १८५३ के शिशिर में शंघाई की जनता ने मांचू अधिकारियों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह का झण्डा खड़ा किया और काउण्टी सरकार की गद्दी पर अधिकार कर लिया। तीनों देशों के राजदूतों ने स्थानीय मांचू अधिकारियों को न केवल शरण दी, बल्कि उन इलाकों में जो विदेशियों के विशेषाधिकार में थे, उन्हें

चीनी व्यापारियों से टैक्स जमा करने की सुविधाएं भी दे दीं । उन्होंने मांचू सेना की सहायता के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय स्वयंसेवकों' का एक दल भी संगठित किया। १८५५ में मांचू और फ्रांसीसी सेनाओं ने मिल कर उस क्रान्तिकारी सेना पर हमला बोल दिया जिसने शहर में काउण्टी सरकार की गद्दी पर अधिकार कर लिया था, और इस तरह वे जन-विद्रोह को दबाने में सफल हो गये। इससे एक वर्ष पूर्व १८५४ में ब्रिटिश और अमरीकी मंत्रियों ने मांचू सरकार को यह आश्वासन दिया था कि वे ताइपिंग सेना को कुचलने के लिए उसकी सहायता को तैयार हैं।

१८५६ में, जब ताईपिंग की राजधानी त्येनकिंग (नानकिंग) में गृह-युद्ध छिड़ा हुआ था, क्रीमिया की लड़ाई समाप्त हो गयी। अब फ्रांस और ब्रिटेन को चीन में अपने सैनिक गढ़ों में भारी संख्या में अस्त्र-शस्त्र भेजने का अवकाश और अवसर मिल गया। १८५७ में ब्रिटेन के राजदूत ने क्यांगनान (आजकल के क्यांगसु और आन्हवे) और क्यांगसी के वायसराय के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा कि यदि मांचू सरकार ब्रिटेन के संग किये गये समझौतों में संशोधन करना स्वीकार कर ले तो बदले में ब्रिटेन उसकी ताइपिंग विद्रोहियों को कुचलने में सहायता करेगा । इन संशोधनों से चीन की प्रभुसत्ता पर पहले से अधिक चोट पहुंचती थी।

यदि प्रस्ताव की शर्तें इतनी अपमानजनक और कड़वी न होतीं तो मांचू अधिकारियों का प्रतिगामी वर्ग उन्हें सहर्ष स्वीकार कर लेता। किन्तु मुश्किल यह थी कि वे उनके निजी स्वार्थों और विशेषाधिकारों पर भी चोट पहुंचाती थीं। इस पर ब्रिटेन और फ्रांस ने अमरीका की सक्रिय सहायता से मांचू राज्य के विरुद्ध दूसरा अफ़ीम-युद्ध (१८५७–१८६०) छेड दिया। मांचू सरकार की सेनाओं को दो बार हरा कर उन्होंने चीन में अपने विशेषाधिकारों को और भी सुदृढ़ कर लिया और उन सुविधाओं को भी प्राप्त कर लिया जिनको हासिल करने के लिए वे अब तक चेष्टाएं कर रहे थे। चीन की तटवर्ती बन्दरगाहों और यांगत्ज़ी के किनारे पर बसे कुछ अन्य शहरों को विदेशियों के लिए खोल दिया गया; विदेशी राष्ट्रों को इन बन्दरगाहों के निकट अपने जंगी जहाज़ रखने का अधिकार मिल गया; आयात-निर्यात कर की व्यवस्था का अधिकार विदेशियों के हाथ में चला गया; विदेशी माल बिना अतिरिक्त टैक्स लगे बेरोक-टोक चीन में दाख़िल हो सकता था; चीन सरकार को अफ़ीम के व्यापार को वैधानिक करार देना पड़ा; और विदेशियों को चीन में हर कहीं व्यापार करने, घूमने-फिरने और ईसाई-धर्म का प्रचार करने की खुली छूट मिल गयी।

विदेशी औपनिवेशिक शक्तियों की ये लोलुप मांगें जब एक बार पूरी हो गयीं और मांचू सरकार पर उनका कड़ा नियंत्रण कायम हो गया——तो उन्होंने ताइपिंग क्रान्ति को कुचलने का बीड़ा उठाया। उन्होंने 'तटस्थता' का नक़ाब उतार कर फेंक दिया और बर्बरतापूर्वक सशस्त्र हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया।

सशस्त्र हस्तक्षेप

१८६० में एक दुःसाहसी अमरीकी, फ्रैडरिक वार्ड ने शंघाई के विदेशी कूटनीतिज्ञ अधिकारियों की सहायता से 'वार्ड रायफ़ल दल' संगठित किया'और ताइपिंग सेना पर, जो उस समय शहर की बाह्य सीमाओं पर थी, आक्रमण कर दिया।

१८६२ से ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका ताइपिंग सेना के विरुद्ध मिलकर युद्ध करने लगे। क्यांगसु प्रान्त में शंघाई, कुनशान, क्यातिंग और सूचो पर 'वार्ड रायफ़ल दल' और उन फ़ौजी दस्तों ने हमले किये जो ब्रिटिश मेजर जनरल जॉन मिचेल, वाइस-एडमिरल जेम्स होप, आर. एन. और फ्रैंच एडमिरल प्रोते की कमान में थे। चेकियांग प्रान्त में ब्रिटिश और फ्रांसीसी समुद्री सेनाओं ने निंगपो पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। फ्रांसीसी रायफ़ल सेना ने हांगचो और शाओशिंग पर हमला बोल दिया और अमरीकी नौ-सेना ने तिंघाई पर आक्रमण कर दिया।

उस समय मांचू शासक वर्ग ने अपना गट-जोड़ उन चीनी देशद्रोहियों से कर रखा था जिनका नेता त्सेंग कुओ-फ़ान था (यह ज़मींदार वर्ग से सम्बन्धित था और बाद में मांचू राज्य का राजनीतिक और सैनिक स्तम्भ बन गया था)। यह वर्ग बिल्कुल निर्लज्ज हो इन सशस्त्र आक्रमणकारियों का कृपापात्र बनने की चेष्टा करने लगा। उन विदेशी लुटेरों को——वे सचमुच लुटेरे ही थे——प्रोत्साहित करने के लिए, मांचू सरकार ने उन्हें ख़िताबों और लम्बे-चौड़े पुरस्कारों से सम्मानित किया। उन्हें यह सुविधा भी दी गयी कि जिस शहर पर वे कब्ज़ा करेंगे, उसमें लूट-मार का अधिकार सब से पहले उन्हें ही मिलेगा। वास्तव में उन्हें शहरों को जलाने, लूटने और उजाड़ने की खुली छूट मिल गयी थी। उन्होंने इस स्थिति का पूरा लाभ भी उठाया। 'वार्ड रायफ़ल दल' ने सिर्फ़ चांगचो में ही ताइपिंग सेना के बीस हज़ार सैनिकों और नागरिकों को मौत के घाट उतारा।

आक्रमण का विरोध

यद्यपि विदेशी आक्रमणकारी ताइपिंग क्रान्ति के ख़ून के प्यासे बन गये थे और उसे कुचलने के लिए युद्ध में अपनी सशस्त्र सेनाएं झोंके जा रहे थे,

फिर भी ताइपिंग नेता निर्भीक रहे और पीछे नहीं हटे । उन्होंने उसी साहस का परिचय दिया जो चीनी जनता का विशेष गुण है । १८६० में ली श्यु-चेंग ने शंघाई में विदेशी मंत्रियों को एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने विदेशी शक्तियों पर चीन पर आक्रमण करने और उसके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करने का अभियोग लगाया और उन्हें एक कड़ी चेतावनी दी। १८६२ में ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेनापतियों ने अचानक यह मांग की कि निंगपो में ताइपिंग के सैनिक गढ़ की प्रतिरक्षा को नष्ट कर दिया जाए और शहर को उनके हवाले कर दिया जाए। निंगपो के सैनिक अफ़सरों ने इस असंगत मांग को साफ़ ठुकरा दिया। यह चीज़ मांचू अधिकारियों के रवैये से, जो हमेशा विदेशी राष्ट्रों के सामने हाथ जोड़े जी-हुज़ूरी करते रहते थे, बिल्कुल उल्टी थी।

अपनी इसी स्पिरिट के कारण ताइपिंग के वीर सैनिकों ने बार बार आक्रमणकारी सेनाओं के दात खट्टे किये और उन्हें गहरा नुकसान पहुंचाया, जब कि विदेशी सेनाओं के पास ताइपिंग सेना से कहीं अधिक साज़ो-सामान था। शंघाई पर कब्ज़ा करने के लिए जो लड़ाई लड़ी गयी, उसमें उन्होंने अनेक बार मांचू सरकार और साम्राज्यवादी देशों की मिली-जुली सेनाओं को करारी हार दी। एडमिरल होप शंघाई के पश्चिम में, लोचियाकांग में घायल हुए। फ्रांसीसी एडमिरल प्रोते सुगक्यांग के युद्ध में मारे गये। 'वार्ड रायफ़ल दल' के अध्यक्ष वार्ड, चेकियांग में त्ज़ेकी की लड़ाई में खेत रहे और फ्रांसीसी जनरल ले ब्रेतों, यांगयू पर कब्ज़ा करने में मांचू सेना की सहायता करते हुए मारे गये।

१८६० के बाद से विदेशी आक्रमणकारी न केवल अपनी सेनाओं को मज़बूत करने में संलग्न थे, बल्कि मांचू सरकार की सैनिक शक्ति का निर्माण भी कर रहे थे और उसे आर्थिक रूप से कुछ सुदृढ़ बनाने की चेष्टा में रत थे। इसका असर उन प्रदेशों पर बहुत बुरा पड़ा जो ताइपिंग के अधिकार में थे। चीनी और विदेशी प्रतिगामी शक्तियों के सामूहिक दबाब के नीचे क्रान्ति का पलड़ा धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ने लगा और उस पर संकट के बादल छाने लगे। १८६३ में मांचू सेना ने, ब्रिटिश मेजर (बाद में जनरल) गॉर्डन के नेतृत्व में नये सैनिकों और अस्त्र-शस्त्रों से फिर से सुसज्जित किये गये 'रायफ़ल दल' की सहायता से, सूचो और चांगचो के महत्वपूर्ण शहरों पर अधिकार कर लिया। जून १८६४ में, 'दिव्य नरेश' हुंग श्यु-चुआन ने आत्महत्या कर ली और जुलाई में ताइपिंग की राजधानी त्येनकिंग (नानकिंग) शत्रुओं के हाथ में चली गयी। ताइपिंग सैनिक शहर की रक्षा करते हुए मारे गये या उन्होंने भी अपने नेता का अनुकरण करते हुए

आत्महत्या कर ली। ऐसा था चीन की क्रान्तिकारी जनता का अजेय साहस और ऐसी थी उसकी अदम्य निष्ठा।

ताइपिंग क्रान्ति की महानता

चीन के इतिहास में जितने भी किसान-विद्रोह हुए हैं, उन सब में ताइपिंग क्रान्ति का स्थान सब से ऊंचा है। उस समय की पृष्ठभूमि में उसकी सफलताएं निस्सन्देह बहुत ही आश्चर्यजनक थीं। ताइपिंग नेताओं ने क्रान्तिकारी सामन्त-विरोधी कार्यक्रम अपनाये और उस सिलसिले में अनेक सुधारों को क्रियान्वित करने के लिए ठोस कदम भी उठाये। उनके वे सब महान आदर्श जिन्हें वे एक नवीन स्वतंत्र राज्य की स्थापना के लिए आवश्यक समझते थे, इन कार्यक्रमों में मौजूद थे।

'भूमि-सुधार' उनके अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में से था, यद्यपि ताइपिंग राज्य के लगातार युद्ध में उलझे रहने से उसे क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सका। (वास्तव में सरकार ने ज़मींदारों को दिया जाने वाला लगान बिल्कुल माफ़ या कम कर दिया था।)

भूमि-सुधार की नीति १८५३ में, जब नानकिंग 'दिव्य राज्य' की राजधानी बन चुका था, 'दिव्य राज्य वंश की भूमि-व्यवस्था' में निर्धारित की गयी थी। इस नीति के अनुसार यह निश्चित हुआ था कि ज़मींदारों की सारी ज़मीन ज़ब्त कर ली जाए और न्यायोचित ढंग से किसानों में बांट दी जाए; जनता पच्चीस-पच्चीस परिवारों के दलों में विभाजित कर दी जाए; प्रत्येक दल का अपना सार्वजनिक धान्यागार हो जिसमें किसान अपनी फ़सल की उपज डालें और अपने पास केवल उतनी मात्रा रखें जितनी कि उनकी अपनी आवश्यकताओं के लिए काफ़ी हो; इस सार्वजनिक खज़ाने से उन सब को आर्थिक सहायता दी जाए जो बीमारी, बुढ़ापे या किसी और कारण से काम करने में असमर्थ हों; ब्याह-शादी, मृतक-संस्कार या अन्य घरेलू ज़रूरतों के लिए भी इसी से लोगों की मदद की जाए। संक्षेप में, भूमि-सुधार कार्यक्रम में यह व्यवस्था थी कि "सब के लिए ज़मीन, सब के लिए भोजन, सब के लिए कपड़ा और सब के लिए रुपया होगा। प्रत्येक व्यक्ति का प्रत्येक वस्तु में बराबर का हिस्सा रहेगा, और कोई भी निर्धन नहीं रहने पाएगा।" यह सुधार 'पूर्ण समता' के सिद्धान्त पर आधारित था, जिसे किसान छोटे पैमाने की कृषि अर्थ-व्यवस्था में हर कहीं अपनाते हैं। दूसरे शब्दों में हम इसे कृषि-समाजवाद के नाम से भी पुकार सकते हैं। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात है कि ऐसा कार्यक्रम पेश किया गया, क्योंकि इसमें ज़मीन

पर निजी मिल्कियत वाली सामन्तवादी व्यवस्था को बिल्कुल ख़त्म कर देने की मांग की गयी थी। ज़मीन के लिए तरसने वाले किसान इससे पूरी तरह संतुष्ट हो जाते। पिछली शताब्दियों की किसान-क्रान्तियों में भाग लेने वाले लोग तो इस चीज़ की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते थे।

यद्यपि 'दिव्य राज्य' का राजनीतिक ढांचा एक केन्द्रीय राज्य जैसा था जिसम 'दिव्य नरेश' को सर्वोच्च सत्ता प्राप्त थी, परन्तु स्थानीय सरकार जनता द्वारा चुनी जाती थी। शान्ति-काल में नागरिक व्यवस्था का विभाग स्थानीय प्रशासन के प्रधानाधिकारी के हाथ में ही हुआ करता था। युद्ध के समय प्रत्येक परिवार को एक व्यक्ति सेना के लिए देना होता था और स्थानीय प्रशासन का प्रधानाधिकारी सैनिक अफ़सर बन जाता था। चीन के इतिहास में यह पहला अवमर था जब जनता को अपने प्रशासकों को चुनने की स्वतंत्रता मिली, जनवादी अधिकार मिले और स्थानीय स्वायत्त शासन का अधिकार मिला।

'दिव्य राज्य' ने उन मब परम्परागत रूढ़ियों को समाप्त कर दिया जिनके अनुसार स्त्रियों का निरादर और शोषण होता था। उसने औरतों और मर्दों को बराबरी के अधिकार दिये।

किसान स्त्रियों को पुरुषों के बराबर ही भूमि का भाग मिलता था। शहरों में मर्दों की तरह औरतें भी दस्तकारी का काम कर सकती थीं। स्त्रियों की एक मेना भी मंगठित की गयी, जिसमें स्त्रियां ही अफ़सर थीं। सिविल-सर्विस की परीक्षाएं स्त्री-पुरुष दोनों के लिए खुली हुई थीं। सब लोगों को एक जैसा राजनीतिक दर्जा प्राप्त था। विवाह को व्यवसाय का रूप देने, स्त्री को दासी और रखैल बना कर रखने, वेश्यावृत्ति और स्त्रियों के पैरों को बांधने पर कड़ी पाबन्दी लगा दी गयी थी। बलात्कार करने वाले को मौत की सज़ा दी जाती थी।

'दिव्य-राज्य' ने पुरातनवादियों की दकियानूसी और घिसी-पिटी साहित्यिक शैलियों का भी विरोध किया। उसकी ओर से लिखने की एक ऐसी शैली प्रचलित की गयी जो सीधी-सादी, सहजगम्य और जनता के हृदय को छूने वाली थी।

हुंग जेन-कान ने तो, जो बाद के ताईपिंग नेताओं में से थे, यह सुझाव भी पेश किया था कि आर्थिक और सामाजिक सुधारों के साथ-साथ पश्चिम के राजनीतिक सिद्धान्तों को भी, उनमें उचित संशोधन कर, स्वीकार किया जाए और पश्चिम की विज्ञान-पद्धति और टैकनिकल दक्षता को अपनाया जाए। उनको आशा थी कि किसान-क्रान्ति के ज़रिये पूंजीवादी उद्योग और व्यापार का भी विकास होगा। किन्तु ताइपिंग राज्य उस समय एक जबर्दस्त सैनिक और राज-

नीतिक बवंडर में फंसा था, इसलिए इन सुझावों को क्रियात्मक रूप नहीं दिया जा सका।

ताइपिंग का ऐतिहासिक कार्य

सचाई यह है कि ताइपिंग क्रान्ति क्योंकि एक विशुद्ध किसान-क्रान्ति थी, इसलिए उसमें वह पिछड़ापन और कमज़ोरियां मौजूद थीं जो किसानों में होती हैं और वे स्वार्थपरता, दलबन्दी, भ्रान्तिपूर्ण निश्चिन्तता, आरामपरस्ती और युग-युग से चली आती रूढ़िवादिता के रूप में उनके नेताओं में प्रतिबिम्बित हुई। इन सब कारणों से क्रान्ति की गति आरम्भ की सफलताओं के बाद रुक गयी, उसकी शक्ति का ह्रास होने लगा और वह प्रतिगामी शक्तियों और सामन्तवाद के गढ़ मांचू राज्य को नष्ट करने में सफल न हो सकी। बाद में ताइपिंग नेता सत्ता के लोभ में पड़ कर आपस में ही झगड़ने लगे और एक दूसरे की हत्या करने लगे।

इन सब घटनाओं के दौरान में चीन धीरे-धीरे एक अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध-सामन्ती देश बनता जा रहा था। एक शक्तिशाली क्रान्ति-विरोधी दल उभर रहा था जो देशी सामन्त वर्ग और विदेशी पूंजीवादी आक्रमण-कारियों का गठ-जोड़ था। किसान-क्रान्ति, जिसमें पहले ही इतनी कमज़ोरियां मौजूद थीं, ऐसे शक्तिशाली शत्रु को परास्त करने में असमर्थ थी।

फिर भी, हमें यह मानना होगा कि ताइपिंग के वीर नेताओं ने अपने कर्तव्य को, जो इतिहास ने उनके कंधों पर डाला था, पूरी निष्ठा से निभाया। सामन्तवाद के विरुद्ध संघर्ष करना ही उनका उद्देश्य था। उन्होंने अपनी सेना का निर्माण किया और अपने राज्य की नींव डाली। उन्होंने देशी और विदेशी शत्रुओं के विरुद्ध डट कर सशस्त्र संघर्ष चलाया। उन्होंने उस बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के लिए ज़मीन तैयार की जो कुछ दशाब्दियों बाद चीन में आरम्भ हुई।

'दिव्य शान्ति राज्य' चीन में चौदह वर्ष तक कायम रहा, वैसे संघर्ष नानकिंग के पतन के बाद भी थोड़ा-बहुत चार वर्ष तक और चलता रहा। ताइपिंग सेना देश के प्रायः सभी भागों में से गुज़री। उसने सामन्तवादी मांचू शासन को गहरा धक्का पहुंचाया और विदेशी आक्रमणकारी सेनाओं को भयंकर नुकसान उठाना पड़ा। ताइपिंग सैनिकों का जोश, उनकी वीरता और सच्ची देशभक्ति, और सब से बढ़-चढ़ कर उनका वह साहस जो उन्होंने विदेशी आक्रमण-कारियों के सम्मुख प्रदर्शित किया—चीनी जनता के दिलों पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं। सामन्तवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष करते हुए, इनसे उसे आज भी बराबर प्रेरणा मिलती रहती है।

('पीपुल्स चायना' अंक ५ और ६, १९५५)

१८९८ का सुधार आन्दोलन

चेन चिग-हुआ
पेकिंग विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के लैक्चरर

१८६४ में सामन्ती मांचू वंश और पश्चिमी आक्रमणकारियों की सम्मिलित शक्तियों ने ताइपिंग की साहसपूर्ण किसान-क्रान्ति को कुचल दिया। तब से पश्चिमी पूंजीवाद की जड़ें चीन की धरती में मज़बूत होती गयीं। चीन पर इसका प्रभाव दो तरह से हुआ। एक ओर चीन धीरे-धीरे अर्ध-उपनिवेश बन गया, दूसरी ओर चीन के सामन्ती समाज में पूंजीवादी तत्वों का विकास तेज़ी से होने लगा।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस प्रक्रिया का पहला दौर ताइपिंग के कुछ नेताओं द्वारा किये गये, पूंजीवादी संस्थाओं के विकास के समर्थन में प्रकट हुआ था। उसके बाद इस नवजात चीनी पूंजीपति वर्ग ने अनिवार्यतः खुद अपने राजनीतिक प्रतिनिधि पैदा किये, जिनका एक महत्वपूर्ण अंग इतिहास में १८९८ के सुधारकों के नाम से प्रसिद्ध है। कांग यू-वे, जिनके विचार धीरे-धीरे वैधानिक राजतंत्र के पक्ष में हो गये, इस आन्दोलन के नेता थे। आन्दोलन का उद्देश्य यह था कि रूस के पीटर महान और जापान के सम्राट मेजी के सुधारों के आधार पर, चीन की सरकार और उसके सामाजिक ढांचे का पुनर्गठन किया जाए। यद्यपि यह आन्दोलन थोड़े समय चला और शीघ्र ही कट्टर सामन्तवादी शक्तियों द्वारा दबा दिया गया, फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विशिष्ट महत्व है। और वह केवल इसलिए नहीं कि इसका उस समय की परिस्थिति पर प्रगतिशील प्रभाव पड़ा, बल्कि इसलिए भी कि इसके परिणाम ने सभी देशभक्तों के आगे यह बात स्पष्ट कर दी कि चीन की समस्याएं क्रान्ति से ही सुलझ सकती हैं, सुधारों से नहीं।

सुधार आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमें उन दोनों प्रवृत्तियों की परीक्षा करनी होगी जिनका प्रादुर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चीन में हो चुका था। ये प्रवृत्तियां थीं—देशी पूंजीवाद का जन्म और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच देश के बंटवारे का बढ़ता हुआ ख़तरा।

चीन में पूंजीवाद का उदय

राजनीतिक और आर्थिक रूप में चीन पर जो विदेशी आक्रमण हुए, उनसे चीन के सामन्ती समाज की स्वाभाविक अर्थ-व्यवस्था का विघटन होने लगा। प्रथम अफ़ीम-युद्ध (१८४०–४२) के बाद किसानों और दस्तकारों की एक बड़ी संख्या गरीबी के गर्त में डूब गयी। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि जगह-जगह विद्रोह की आग भड़क उठी जिसमें ताइपिंग क्रान्ति का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। इससे पूजीवादी व्यवसायों के लिए बेरोज़गार लोगों की एक बड़ी संख्या भी जमा हो गयी।

१८६० के आस-पास कुछ निजी उद्योगों में मशीनों का उपयोग आरम्भ हो गया। १८६१ में फ़ूचो के कई व्यापारियों ने चाय को ढेरियों में दबाने के लिए मशीनें ख़रीदीं। दो वर्ष बाद शंघाई के व्यापारियों ने चावल का छिलका उतारने के लिए मशीनों का उपयोग आरम्भ कर दिया। इस तरह छोटे कारखानेदारों की संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगी और वे चीनी पूंजीपति वर्ग की निचली तह बन गये।

कुछ ज़मीदार, अफ़सर, साम्राजियों के दुमछल्ले और चोटी के व्यापारी भी उद्योगों मे पूजी लगाने लगे। उदाहरणार्थ, १८८३ में शंघाई के एक धनी व्यापारी ने १,००,००० चांदी के डालरों की पूजी से एक इंजीनियरिंग का कारखाना स्थापित किया। इस तरह के लोग सामन्ती शासक वर्ग मे से आये थे जिसका ढांचा दिन पर दिन बिखरता व गिरता जा रहा था। इनमें से कुछ का विदेशी पूजीपतियों से गठजोड़ था। धन और राजनीतिक सहायता, दोनों की सुविधा होने से ये लोग चीनी पूंजीपति वर्ग की सबसे ऊपरी तह बन गये।

किन्तु सामन्तवाद और विदेशी पूंजीवाद के दबाव के कारण चीन में पूजी-वाद का विकास जन्म से ही कुंठित हो गया।

चीन पर उसकी इच्छा के विरुद्ध जो असमान समझौते थोप दिये गये थे, उनसे विदेशियों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे—चीन की आयात-निर्यात कर-व्यवस्था पर भी विदेशियों का नियंत्रण था। इस सुविधा से लाभ उठा उन्होंने चीन में अपना माल ठूंसना आरम्भ कर दिया। १८८९–९२ के तीन वर्षों में चीन में जितना माल आयात किया गया, वह १८६५–६८ में आयात किये गये माल से दुगने से भी अधिक था। फल यह हुआ कि चीनी माल की बिक्री कम हो गयी।

संघर्षरत चीनी पूंजीवाद पर एक और चोट तब पड़ी जब सामन्ती अधि-कारियों के एक दल ने, जो 'चीन का विदेशीकरण करने वाले' कहलाते थे,

चीन के उद्योगों पर अपना एकाधिकार कायम कर लिया। इन व्यक्तियों में त्सेंग कुओ-फ़ान, लि हुंग-चांग और त्सो त्सुंग-तांग जैसे दरबार के उच्चाधिकारी भी शामिल थे जो ताइपिंग के क्रान्तिकारियों को कुचलने के लिए छेड़ी गयी लड़ाई में पश्चिमी आक्रमणकारियों के संरक्षण में चले गये थे। उनकी शक्ति अपने विदेशी संरक्षकों की शक्ति के साथ-साथ बढ़ने लगी। उन्होंने गोला-बारूद, सूती कपड़ा, और इंजीनियरिंग के कारखाने स्थापित किये। उन्होंने चीन में रेलों, खानों टेलीग्राफ और भाप से चलने वाले जहाज़ों का निर्माण-कार्य आरम्भ किया। इस सब के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य जनता के विरुद्ध अपने वर्ग को शक्तिशाली बनाना था। वे उन सब आम पूजीपतियों को, जिन्हें राज्य का सहयोग प्राप्त नहीं था, अपने रास्ते से दूर कर देना चाहते थे।

दो पाटों के बीच पिस कर स्वतंत्र पूजीवादी व्यवसाय जीर्ण या मृतप्राय हो गये, यहां तक कि बड़े पूजीपतियों के लिए भी विकास का क्षेत्र संकीर्ण होता गया और उन्हें अपना भविष्य अन्धकारमय दिखने लगा। इन ऐतिहासिक परि-स्थितियों के दबाव में, चीन के राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग की अवस्था भी अनिश्चित सी हो गयी। एक ओर उसका विरोध सामन्तवाद और साम्राज्यवाद से था जो उसकी प्रगति में रोड़े अटकाते थे। दूसरी ओर यह वर्ग स्वयं कमज़ोर, ढुलमुल-यकीन और समझौतापरस्त था, उसमें अपने इन शत्रुओं के विरुद्ध डट कर संघर्ष करने के लिए संकल्प और साहस का अभाव था।

बंटवारे का ख़तरा

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में विश्व पूंजीवाद साम्राज्यवाद के दौर में दाख़िल हुआ और चीन पर उसके आक्रमण का एक नया दौर आरम्भ हो गया।

आर्थिक रूप से वस्तुओं के निर्यात की अपेक्षा पूंजी के निर्यात में वृद्धि होने लगी। अनेक राष्ट्रों के साम्राज्यवादियों ने चीन में धड़ाधड़ अपने कारखाने खोलने शुरू कर दिये। रेलों और खानों पर अधिकार जमाने के लिए उनमें आपस में होड़ होने लगी। १८९५–९९ में ही मांचू सरकार को मोटे ब्याज पर ५४० लाख पौंड की रकम ऋण के रूप में दी गयी। मांचू सरकार को घरेलू साधनों से जो कुल वार्षिक आय होती थी, यह रकम उससे साढ़े चार गुना अधिक थी। इस तरह चीन के वित्तीय साधनों पर विदेशी बैंकों का प्रभुत्व हो गया।

एक ओर विदेशी साम्राज्यवादियों में चीन में पूंजी लगाने की सुविधाओं के लिए होड़ हो रही थी, दूसरी ओर वे चीन की भूमि पर भी अपना

अधिकार जमाते जा रहे थे। १८९४ में जापान ने, जहां साम्राज्यवाद का विकास अन्य देशों की अपेक्षा बाद में हुआ था, अमरीका और ब्रिटेन की शह पर, चीन के विरुद्ध उसे लूटने-खसोटने के लिए युद्ध छेड़ दिया। भ्रष्ट और भीरु मांचू सरकार में इतना साहस ही न था कि वह जापान को तैवान और पेसकाडोरस पर अधिकार करने से रोक सकती। जापान की देखा-देखी दूसरे देशों ने भी निडर हो कर चीन के तट पर अपने अड्डे स्थापित करने आरम्भ कर दिये। दो वर्ष में ही चीन की अधिकतर अच्छी बन्दरगाहों पर विदेशियों का अधिकार हो गया। रूस की ज़ारशाही ने पोर्ट आर्थर और डेरेन पर अधिकार कर लिया, वेहाइवे और कोवलून ब्रिटेन के हाथ में चले गये, क्वांगचोवान पर फ्रांस और त्सिंगताओ पर जर्मनी का कब्ज़ा हो गया। विदेशियों ने इन बन्दरगाहों को चीन के अन्दर घुसने के लिए अड्डों के रूप में प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया।

प्रत्येक साम्राज्यवादी देश ने प्रसार के लिए अपने-अपने 'प्रभाव क्षेत्र' निर्धारित कर लिये थे। यांगत्ज़ी घाटी पर ब्रिटेन का, शान्तुग पर जर्मनी का, चीन की दीवार के उत्तर की ओर के प्रदेश पर ज़ारशाही रूस का, फ़ुक्येन प्रान्त पर जापान का दावा था। शेचुआन, युन्नान, क्वांगसी और क्वांगतुग प्रान्त ब्रिटेन और फ्रांस ने छांट लिये थे। चीन का औपनिवेशिक विभाजन साम्राज्यवादी देशों का मुख्य उद्देश्य हो गया।

लॉर्ड सैलिसबरी ने, जो उस समय ब्रिटेन के विदेश मंत्री थे, कहा था कि चीन एक ऐसा राष्ट्र है जो अपनी 'आख़िरी सांसें' गिन रहा है और जो भी चाहे उसमें से अपने लिए मन-चाहा भाग काट सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका उस समय स्पेन के उपनिवेशों को हड़पने के लिए युद्ध में रत था। इस भय से कि वह कहीं पीछे न छूट जाए, उसने भी चीन की महत्वपूर्ण रेलवे लाइनों (उदाहरणत: पेकिंग-हैंको और हैंको-कैण्टन रेलों) पर अन्य देशों की तरह अपने पंजे गड़ाने शुरू कर दिये। बाद में उसने यह मांग की कि दूसरे देशों की भांति उसके लिए भी 'द्वार खुला रखा जाए' और उसे भी चीन में 'बराबर की सुविधाएं' दी जाएं। दूसरे शब्दों में, अमरीका का उद्देश्य अन्य सभी साम्राज्यवादियों के 'प्रभाव क्षेत्रों' में व्यापार का अधिकार प्राप्त करना था।

सामन्ती मांचू शासक राष्ट्र पर घिरते इस संकट के प्रति सचेष्ट न थे। इसके विपरीत, वे एक ओर साम्राज्यवाद के आगे गिड़गिड़ाते थे और दूसरी ओर चीनी जनता का शोषण करते थे। साम्राज्यवादी-सामन्तवादी गठजोड़ और चीनी जनता के बीच संघर्ष अधिकाधिक तीव्र होता गया। जगह-जगह

किसान-विद्रोह होने लगे । उच्चवर्गीय बुद्धिजीवियों में से कुछ ने चीन के आधुनिककरण और राजनीतिक सुधारों के लिए अपनी आवाज़ उठायी, ताकि चीन की राष्ट्रीय सत्ता कायम रह सके।

सुधारवादी विचारों का प्रसार

१८९४–९५ के चीन-जापान युद्ध से भी पहले राजनीतिक सुधारवाद का एक प्रारम्भिक रूप चीन के कुछ उच्चवर्गीय बुद्धिजीवियों में प्रकट हुआ था जो पूंजीवादी विचारधारा के आरम्भ को प्रतिबिम्बित करता था। इन लोगों ने यह मांग की थी कि चीन को राष्ट्रीय स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, पूंजीवाद का स्वतंत्र रूप से विकास होना चाहिए और पूंजीपति वर्ग को एक उचित राजनीतिक दर्जा प्राप्त होना चाहिए।

युद्ध में मांचू सरकार दिवालिया हो चुकी थी और चीन में किसी प्रकार के औद्योगिक धंधे चलाना उसकी सामर्थ्य के बाहर था। इसलिए स्वतंत्र पूंजीपतियों को अपने उद्योगों के लिए पहले से अधिक छूट मिलने लगी। शंघाई में आधुनिक ढंग के नौ सूती मिलों की स्थापना हुई तथा क्यांगसु, चेकियांग, हूपे:, हुनान, शेन्सी, शेचुआन, शान्सी और क्वांगतुंग प्रान्तों में अन्य कारखाने स्थापित हुए। पूंजीपतियों की संख्या बढ़ने लगी और उनका वर्ग कुछ शक्तिशाली हो गया। इससे पूंजीवादी विचारधारा के फलने-फूलने के लिए एक सामाजिक आधार तैयार हो गया।

ये परिस्थितियां थीं जिनमें सुधारवादियों के नेता कांग यू-वे (१८५८–१९२७) ने अपना कार्य आरम्भ किया। वह कैण्टन के निवासी थे और उनका जन्म ज़मींदार-अधिकारी वर्ग में हुआ था। उन्होंने कनफ़्यूशियस विचारधारा में ही पश्चिमी बुर्जुआ-जनवादी सिद्धान्तों के आधार पर कुछ संशोधन किये थे। १८९५ में, जिस समय चीन सरकार जापान के संग आत्मसमर्पण की शिमोनोसेकी संधि करने वाली थी, कांग ने प्रान्तीय सिविल सर्विस के कोई एक हज़ार स्नातकों को ,जो केन्द्रीय सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए आये हुए थे, इकट्ठा किया और वे सब सम्राट कुआंग शु के पास एक प्रार्थना-पत्र ले गये। प्रार्थना-पत्र में कहा गया था कि चीन को संधि पर हस्ताक्षर नहीं करने चाहिएं; युद्ध जारी रखा जाए और शीघ्र ही देश में सुधार किये जाएं। सुधारों का उल्लेख करते हुए प्रार्थना-पत्र में कहा गया था कि सरकारी बैंकों और आधुनिक ढंग की डाक सर्विस की स्थापना की जाए; रेलों और समुद्री जहाज़ों के

निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाए; और व्यक्तिगत चीनी पूंजी से फ़ैक्टरिया और खानें खोली जाएं। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में यह मांग की गयी थी कि सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर संसद् का चुनाव किया जाए; समाचार-पत्रों और स्कूलों की स्थापना की जाए; सरकारी पदों के लिए पुराने ढंग की परीक्षाएं हटा दी जाएं और केवल योग्य व्यक्तियों को ही अधिकारी नियुक्त किया जाए।

किन्तु दरबार के दकियानूसी सामन्तों की अड़चनों के कारण प्रार्थना-पत्र सम्राट तक नहीं पहुंच सका। फिर भी, वह बड़ी संख्या में लोगों में वितरित हुआ और जनता पर उसका प्रभाव पड़ा। इस प्रार्थना-पत्र से एक ऐसे राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसमें लोगों ने काफ़ी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया।

कांग ने उसके कुछ दिन बाद ही पेकिंग से एक समाचारपत्र निकालना शुरू कर दिया और अपने विचारों का प्रचार करने के लिए च्यांग श्वेः हुइ (अध्ययन द्वारा शक्ति) नामक संगठन की स्थापना की। १८९६–९७ में उन्होंने क्यांगसु, चेकियांग, क्वांगतुंग और क्वांगसी प्रान्तों का दौरा किया और लोगों में अपने सुधार आन्दोलन के उद्देश्यों का प्रचार किया। उनके असर से अनेक स्थानों पर धड़ाधड़ अध्ययन-मण्डल स्थापित होने लगे, समाचारपत्र निकलने लगे और स्कूल खुलने लगे।

इस तरह इस सुधार आन्दोलन ने एक राजनीतिक शक्ति का रूप धारण कर लिया।

सौ दिनों का सुधार

मांचू दरबार में भी उस समय दो दल थे। एक दल विधवा राजमाता त्से शि का था। सम्राट कुआंग शु और उनसे पहले सम्राट के काल में भी असली शक्ति इसी दल के हाथ में थी। यह दल मांचू सरकार के उन दकियानूसी सामन्तों से भरा था जिनका प्रभुत्व १८६२ से चला आ रहा था।

दूसरे दल का नेतृत्व स्वयं सम्राट करते थे। उन्हें यह बात पसन्द नहीं थी कि वह अपनी चाची विधवा राजमाता के, जिसके हाथ में असली शक्ति थी, कठपुतली बने रहें। कुआंग शु ने 'हान' (चीनी) जाति के कई अधिकारियों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किया। उन्हें आशा थी कि वे उनकी राज्य की बागडोर हाथ में लेने में सहायता करेंगे।

जब कांग यू-वे के सुधार आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा तो इस दल ने उस में अपना लाभ देखा। उस आन्दोलन से दरबार के दकियानूसी लोगों की शक्ति

पर अंकुश लगने की संभावना थी जिससे सम्राट की शक्ति अधिक सुदृढ़ हो सकती थी।

१८९७ के अन्त में जर्मनी ने त्सिंगताओ की बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया और शान्तुंग प्रान्त पर हमला बोल दिया। कांग यू-वे ने तुरन्त पेकिंग पहुंच कर सम्राट के नाम एक ज्ञापन भेजा। उन्होंने सम्राट का ध्यान देश-विभाजन के संकट की ओर खींचा और सुधारों का सुझाव रखा। एक दूसरे ज्ञापन में उन्होंने अपना कार्यक्रम सम्राट के सामने पेश किया। कार्यक्रम की रूपरेखा राजतंत्र पर आधारित थी और वह १८६८ में हुए जापान के मेजी सुधारों के नमूने पर तैयार किया गया था। इस कार्यक्रम के अनुसार, सुधार के लिए पहल-कदमी सम्राट की ओर से होनी थी। जनता और बुद्धिजीवियों को यह अधिकार मिलना था कि वे जब चाहें सम्राट के पास प्रार्थना-पत्र भेज सकें। योग्य व्यक्तियों को राज्य के पदों पर स्थापित होना था। राजनीतिक सुधारों के लिए एक ब्यूरो स्थापित किया जाना था, जिसके अधीन कार्यालयों को इन सुधारों को कानून, वित्त, शिक्षा, कृषि, उद्योग, वाणिज्य, रेल, डाक, खानों, सार्वजनिक संगठनों की देख-रेख, सेना और नौ-सेना के क्षेत्रों में लागू करना था। प्रत्येक प्रान्त में सिविल सर्विस ब्यूरो की स्थापना होनी थी।

कांग यू-वे की इच्छा थी कि सुधारों का कार्यक्रम सम्राट की देख-रेख में ही चलाया जाए। उन्हें आशा थी कि सुधारवादी नये केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारी दफ़्तरों के ज़रिये राज्य के काम-काज को चला सकेंगे। इसकी तैयारी के लिए उन्होंने अपने अनुयायियों का एक राजनीतिक दल संगठित किया जिसका रूप पूंजीवादी संगठनों से मिलता-जुलता था। उन्होंने इस दल का नाम पाओ कुओ हुइ या 'राष्ट्र-रक्षा समाज' रखा। इस तरह की संस्थाएं शंघाई, हुनान, चेकियांग और युन्नान प्रान्तों में भी स्थापित हुई।

सम्राट कुआंग शु के सामने एक ओर देश के बंटवारे का खतरा था, दूसरी ओर वह अपनी महत्वाकांक्षाओं को भी पूरा करना चाहते थे। अतः ११ जून १८९८ को जनमत को शांत करने के लिए उन्होंने एक आदेश निकाला जिसमें सुधार करने की इच्छा प्रकट की गयी थी। कांग यू-वे और दूसरे व्यक्तियों को सरकारी ओहदे दिये गये। उन्हें शाही आदेशों का मसौदा तैयार करने का महत्वपूर्ण अधिकार भी प्राप्त हो गया।

अगले तीन महीनों में सम्राट के नाम से बहुत से आदेश जारी किये गये। इनके द्वारा वे सुधार शुरू कर दिये गये जिनकी रूपरेखा कांग यू-वे ने अपने

ज्ञापनों में दी थी। किन्तु इनमें से अधिकतर केवल कागजी सुधार बन कर रह गये क्योंकि दरबार के दकियानूसी सामन्त बराबर अड़ंगा लगा रहे थे। वे लोग विधवा राजमाता की शह पर सम्राट और उसकी सुधारवादी नीतियों का तीव्र विरोध करने लगे। शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि उनका पलड़ा भारी होने लगा है। सुधारों की आशा जाती रही, यही नहीं बल्कि यहां तक ख़तरा हो गया कि कहीं सम्राट को गद्दी से न हटा दिया जाए।

सुधारवादियों ने बौखला कर युआन शिह-काइ की सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये। वह टेंटशिन के पास ७,००० सैनिकों की आधुनिक ढंग की 'नयी सेना' के कमाण्डर थे। उनकी सहायता से सुधारवादी विधवा राजमाता और अन्य प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध एक दरबारी विद्रोह करना चाहते थे। युआन सेना के गद्दार और बहुत ही चालाक अधिकारी थे। वह पहले तो सुधारवादियों से मित्रता जताते रहे, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने उनकी कमज़ोरी को भांप लिया। उन्होंने उनकी योजनाओं का भेद दे दिया और इससे शत्रुओं को उन पर पहले आक्रमण करने का अवसर मिल गया। २१ सितम्बर १८९८ के दिन कुआंग शु पकड़ लिये गये। अगले दस वर्ष, जब तक कि मृत्यु ने उन्हें मुक्त नहीं कर दिया, वह बन्दी की हैसियत से नाम मात्र के सम्राट बने रहे। छः महत्वपूर्ण सुधारकों को बन्दी बना लिया गया और फांसी पर लटका दिया गया। उनमें तान शु-तुंग भी थे जो उनमें सब से प्रगतिशील व्यक्ति थे। कांग यू-वे और उनके प्रधान अनुयायी लियांग चि-चाओ देश से बाहर भाग जाने में सफल हो गये।

इस तरह सौ दिनों के सुधार को तलवार के ज़ोर से ख़त्म कर दिया गया। प्रतिगामी शक्तियों की विजय के बाद एक महीने के अन्दर ही विधवा राजमाता ने सब सुधारवादी आदेश रद्द कर दिये और पुराना ढर्रा फिर से कायम हो गया।

ऐतिहासिक महत्व

कांग यू-वे, लियांग चि-चाओ और अन्य सुधारक नये पूंजीपति वर्ग की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे। वे यह ख़तरा देख रहे थे कि राष्ट्र अर्ध-औपनिवेशिक अवस्था से धीरे-धीरे औपनिवेशिक अवस्था में पहुंच सकता है, और उन्होंने इसका विरोध करना चाहा था। उस समय की ऐतिहासिक परि-स्थितियों में सुधार आन्दोलन का स्वरूप बहुत-कुछ प्रगतिशील था।

यद्यपि सुधार आन्दोलन सफल न हो सका, किन्तु बुर्जुआ-जनवादी विचार,

जो चीन की सामन्तवादी संस्कृति के विरुद्ध थे, देश के कोने-कोने में फैला दिये गये थे। येन फ़ु ने हक्सले और ऐडम स्मिथ की पुस्तकों का अनुवाद किया और तान शू-तुग की पुस्तक 'उदारता का अर्थ : एक अध्ययन' प्रकाशित हुई जिसमें लेखक ने सामन्तवाद के बन्धनों को तोड़ने के पक्ष में आवाज़ उठायी थी। इन पुस्तकों ने उस समय और आगे बुर्जुआ क्रान्ति के दौर में जनता को बहुत प्रभावित किया। मांचू सरकार जनमत की इस बढ़ती हुई शक्ति की अवहेलना न कर सकी और उसने कुछ सीमा तक जनता की भाषण, प्रेस और संगठन की स्वतंत्रता को स्वीकार किया और व्यक्तिगत पूजीवादी व्यवसायों को वैधानिक रूप दिया।

किन्तु आन्दोलन की अनेक कमज़ोरियां थीं।

उसका आधार उच्च पूजीपति वर्ग था जो स्वयं सामन्ती शासक वर्ग से उत्पन्न हुआ था और जिसकी नीति संघर्ष मे बहुत ही ढुलमुल थी। सुधार आन्दोलन के बहुत से नेता सामन्ती ज़मींदार परिवारों के बुद्धिजीवी थे और साम्राज्यवाद व सामन्तवाद के संग समझौता करने की इच्छा रखते थे।

साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में सुधारवादियों का मत यह था कि चीन अपने पिछड़ेपन और कमजोरी के कारण ही विदेशी आक्रमण का शिकार बनता रहा है। उनके तर्क के अनुसार, यदि चीन में पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था का विकास हो जाए तो वह शक्तिशाली, समृद्ध और सम्मानित राष्ट्र बन जाएगा।

सुधारवादियों का यह मत सत्य के बिल्कुल विपरीत था। वे यह भूल जाते थे कि साम्राज्यवादियों के देश में घुस आने से ही चीन एक जर्जरित और संकट-ग्रस्त देश बन गया था। वे अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए कुछ साम्राज्यवादी देशों का मुह जोहा करते थे और उन्हीं की सहायता के बल पर दूसरे साम्राज्यवादी देशों को नीचा दिखाना चाहते थे। उदाहरणार्थ, एक समय उनकी ओर से यह सुझाव रखा गया था कि चीन, जापान, ब्रिटेन और अमरीका के बीच एक पारस्परिक समझौता हो जाना चाहिए। वे यह भी चाहते थे कि जापान के भूतपूर्व प्रधान मंत्री हिरोबूमि इतो और ब्रिटेन के मिशनरी टिमोठी रिचर्ड को राज्य के परामर्शदाता नियुक्त किया जाए। वे यह नहीं समझते थे कि ब्रिटेन, अमरीका और जापान सुधारवादियों के ही ज़रिये चीन में अपनी जड़ें और भी मज़बूत करने की चेष्टाएं कर रहे है। वे इस बात से भी अनभिज्ञ थे कि कोई भी साम्राज्यवादी देश यह नही चाहता कि एक औपनिवेशिक या अर्ध-औपनिवेशिक देश में देशी पूजीवाद स्वतंत्र रूप से फले-फूले।

सामन्तवाद के सम्बन्ध में सुधारवादियों का मत यह था कि मांचू निरंकुश शासन की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। किन्तु उनके विचार में यह परिवर्तन ऊपर से होना चाहिए था। उन्होंने अपनी सारी आशाएं कुआंग शु पर लगा दी थीं जिसे वह 'जागरूक सम्राट' समझते थे। दूसरे शब्दों में वे सम्राट की छत्रछाया में एक ऐसा 'वैधानिक राजतंत्र' बनाना चाहते थे जिसमें सामन्ती ज़मींदारों और पूंजीपतियों के हित एक दूसरे से न टकराएं।

सुधारवादी उन क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों से अलग रहना चाहते थे जो उस समय आम जनता में, विशेष कर किसानों में फैल रही थी। वे तो केवल सुधारों द्वारा ही क्रान्ति लाना चाहते थे।

सुधारवादियों का दृष्टिकोण एक ओर साम्राज्यवादियों और सामन्ती शासक वर्ग के प्रति भ्रान्तिपूर्ण था, दूसरी ओर वे जनता की क्रान्तिकारी शक्ति से डरते थे। उनकी असफलता इन्हीं दो कारणों में निहित है।

१८९८ के प्रतिगामी विद्रोह के बाद, चीन में साम्राज्य-विरोधी जन-संघर्ष तेज़ी से फैलने लगा। १८९९ में यि हो तुआन (बौक्सरों) का जन-आन्दोलन आरम्भ हुआ जो देशभक्ति का एक अपूर्व प्रदर्शन था। जनवादी क्रान्तिकारी, जिनके नेता सुन यात-सेन थे, निम्न और छोटे पूजीपतियों का प्रतिनिधित्व करते थे। उनकी यह मांग भी कि सामन्ती मांचू सरकार को उलटने के लिए देश में एक जनवादी क्रान्ति आवश्यक है, अधिकाधिक लोकप्रिय हो रही थी। समय की गति के संग क्रान्ति ज़ोर पकड़ती गयी, परंतु कांग यू-वे और लियांग चि-चाओ जैसे कुछ बचे-खुचे सुधारवादी सुधारवाद के उन पुराने सिद्धान्तों से ही चिपटे रहे जो अब बिल्कुल बेकार हो चुके थे। उन्होंने एक दल पाओ हुआंग तांग (राजतंत्रवादी दल) नाम से संगठित किया। बाद में ये मुट्ठी भर लोग क्रान्ति के प्रतिगामी शत्रु बन गये।

१८९८ के सुधार आन्दोलन की असफलता ने असंदिग्ध रूप से यह सिद्ध कर दिया कि चीन जैसे अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध-सामन्तवादी देश में सुधारवादी उपायों द्वारा कोई प्रगति नहीं हो सकती। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि साम्राज्यवाद और विदेशी शासन को नष्ट किये बिना राष्ट्र की रक्षा नहीं हो सकती। इन शक्तियों से समझौता करना चीन के लिए घातक होता और उसकी दशा दिन पर दिन बदतर होती जाती।

चीनी जनता ने इस आन्दोलन से यह महत्वपूर्ण शिक्षा ली।

('पीपुल्स चायना' अंक ११, १९५५)

यि हो तुआन—साम्राज्य-विरोधी देशभक्त

ताइ यि*

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में जब चीन पर साम्राज्यवादी शक्तियों का आक्रमण चरमावस्था में पहुंच गया तो राष्ट्र को अपनी स्वतंत्रता पूर्णतया लुप्त होती दिखायी देने लगी। १८९८ के सुधार आन्दोलन ने, जिसके नेता कांग यू-वे थे और जो चीन के नवजात पूंजीपति वर्ग के दक्षिण पक्ष का प्रतिनिधित्व करता था, साम्राज्यवादियों की चीन को विभाजित करने की कोशिशों का हल्का सा विरोध किया। वह आन्दोलन असफल रहा। पर अगले ही वर्ष विदेशी आक्रमण और उत्पीड़न के विरुद्ध जनता के निम्न स्तर (मुख्यतया किसानों) का जन-आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। यह, यि हो तुआन (न्याय व समता समाज, पश्चिम में 'बौक्सर' नाम से विख्यात) का साम्राज्य-विरोधी देशभक्तिपूर्ण विद्रोह था। १८५१-१८६४ की तेपिंग क्रान्ति के बाद जो अनेक किसान-विद्रोह हुए यह उनमें सबसे बड़ा था।

चीन के विदेशी गिरजाघर

चीनी जनता विदेशी गिरजाघरों के विशेषाधिकारों और अनाचारों के विरुद्ध देशभक्तिपूर्ण संघर्ष कर रही थी। यि हो तुआन विद्रोह उसी संघर्ष का एक विकसित रूप था। पश्चिम के उपनिवेशवादी देश मिशनरियों को अपने चीन-विरोधी आक्रमण में आरम्भ से ही एक अस्त्र की तरह प्रयुक्त कर रहे थे। १८६० तक मिशनरियों की हलचलें तथाकथित 'संधि बन्दरगाहों' तक सीमित थीं। लेकिन उस साल मांचू सरकार को बाध्य हो विदेशी गिरजाघरों को यह अधिकार देना पड़ा कि वे देश में कहीं भी, मोल या किराये पर, ज़मीन ले सकते हैं और उस पर इमारत बना सकते हैं। तब से देश के भीतरी भागों में दूर-दूर तक मिशनरी संस्थाओं का एक जाल फैल गया जहां गुप्त रूप से विविध विदेशी सरकारों के हितों के लिए काम होने लगा। गुप्त सूचनाएं एकत्रित करना उनका एक कर्तव्य बना दिया गया। यह चीज़ कई बार साम्राज्यवादी प्रकाशनों तक में स्वीकार

---

* **लेखक चीनी लोक विश्वविद्यालय में चीनी इतिहास के अध्यापन व शोध विभाग में आधुनिक काल मंडल के अध्यक्ष हैं।**

की जा चुकी है। उदाहरणार्थ, एक अमरीकी मिशनरी जे. स्पेचर ने, जो चालीस साल दक्षिणी चीन में काम करता रहा था, अपनी पुस्तक 'चीन में ईसाइयत की विजय' में लिखा है कि अमरीकी कौंसलों और अमरीकी मिशनरियों में यह तय था कि मिशनरी जहां भी काम करेंगे, वहां के हालात की कौंसलों को बराबर रिपोर्ट देते रहेंगे।

विदेशी मिशनरियों को संधियों द्वारा एक विशिष्ट दर्जा प्राप्त था और चीनी कानून से छूट मिली हुई थी। उनमें से अधिकांश ने उसका लाभ उठा अपने चारों ओर स्थानीय नीच व्यक्तियों का एक दल इकट्ठा कर लिया। ये वे लोग थे जो अपने स्वामियों को मिली छूट का कुछ भाग खुद पाने के लिए 'ईसाई' बन गये थे। उन्होंने लोगों से उनकी ज़मीन और मकान छीन लिये। वे लोगों को सताते रहते थे और कभी-कभी उन पर हथियारों से हमला तक कर देते थे।

इस तरह के मिशनरी, दरअसल, भेड़ की खाल में छिपे भेड़िये थे। उनकी उद्दण्डता ने अधिकाधिक चीनियों को साम्राजी उत्पीड़न की वास्तविकता से सचेत कर दिया। इसलिए, १८६० के बाद हर कहीं विदेशी गिरजाघरों के विरुद्ध संघर्ष खड़े होने लगे। यह साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता का स्वतः उद्भूत विरोध था।

इस तरह के सभी संघर्षों में मांचू सरकार ने गिरजाघरों का पक्ष लिया। मिसाल के लिए, १८७० में टेंटशिन के फ्रांसीसी गिरजाघर-काण्ड में फ्रांसीसी कौंसल ने जनता पर गोली चला दी। उसके बाद जो लड़ाई हुई उसमें वह मारा गया। मांचू सरकार ने इसके जवाब में कुछ स्थानीय अधिकारियों को निर्वासित किया, फ्रांसीसियों को हर्जाना अदा किया और १८ देशभक्तों को मृत्यु-दण्ड दिया। चापलूसी और कायरता के इस रवैये से प्रोत्साहन पा, साम्राज्यवादियों ने अपनी लूट और तेज़ कर दी और जनता मिशनरी संस्थाओं से और भी घृणा करने लगी।

१८९४ में जापान के हाथों चीन की पराजय हो जाने के बाद, विदेशी शक्तियों में चीनी बन्दरगाहों और रेल-निर्माण की रियायतों के लिए एक आम छीना-झपटी शुरू हो गयी। समूचा देश विदेशी 'प्रभाव-क्षेत्रों' में बंट गया। इस साम्राज्यवादी संकट ने, जिससे लोगों का अस्तित्व तक ख़तरे में पड़ गया था, जनता की आत्मा को झकझोर डाला। कस्बों और देश के भीतरी गांवों में खड़े ऊंचे-ऊंचे गिरजाघर उसे ऐसे लगने लगे मानो वे देश की छाती पर विदेशी गुलामी की अग्रिम चौकियां या गढ़ हों। ये थीं वे परिस्थितियां जिनमें किसानों ने, यि हो तुआन के नेतृत्व में, अपना प्रबल साम्राज्य-विरोधी, देशभक्तिपूर्ण आन्दोलन आरम्भ किया।

यि हो तुआन

यि हो तुआन संगठन आरम्भ में पाइ ल्येन च्याओ (श्वेत कमल सोसायटी) नाम की एक गुप्त सोसायटी का अंग था जो जन-साधारण पर आधारित थी और १४वीं शताब्दी से ही (पहले मंगोलों और फिर मांचुओं के) सामन्ती उत्पीड़न और विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष कर रही थी। १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में उसने शेचुआन और हूपे: में मांचू राजवंश के विरुद्ध बड़े पैमाने पर विद्रोह किया था।। वह विद्रोह दबा दिया गया और श्वेत कमल सोसायटी विविध दलों में बिखर गयी। इन दलों में से एक यि हो तुआन था जिसकी हलचलें उत्तरी चीन के शान्तुग और चिहली (अब होपे) प्रान्तों में बराबर जारी रहीं।

१८९८ में जर्मनी ने शान्तुंग की त्सिगताओ बंदरगाह पर ज़बर्दस्ती अधिकार कर लिया और वहां से प्रान्त की राजधानी त्सिनान तक एक रेलवे लाइन निकाली। इस लाइन को बनाते हुए जर्मनों ने लोगों की ज़मीनों और मकानों पर कब्ज़ा कर लिया और एक अवसर पर काओमि काउण्टी के कोई २० किसानों की हत्या कर डाली। इस जुल्म से शान्तुंग की जनता के सब्र का बाध टूटने लगा।

१८९९ के आरम्भ में चु हुंग-तेंग ने, जो इस प्रान्त में यि हो तुआन के एक नेता थे, गावों और कस्बों के गरीब लोगों को इस नारे के नीचे संगठित किया कि "मांचुओं का विरोध करो और विदेशियों का सफ़ाया करो।" इस संगठन ने जनता के बड़े-बड़े प्रदर्शनों द्वारा स्थानीय मांचू अधिकारियों को इस चीज़ के लिए मजबूर कर दिया कि वे गिरजाघरों और लोगों के बीच चलने वाले मुकदमों में अनुचित फ़ैसले न करें। साथ ही, उन्होंने साम्राज्यवादी मिशनरी संस्थाओं को चीन से निकल जाने का नोटिस दे दिया। गिरजाघरों और उनके अनुयायियों ने, इसके उत्तर में, विदेशी दूतों द्वारा मांचू सरकार पर यह दबाव डलवाया कि वह यि हो तुआन का दमन करे। इसी के साथ-साथ उन्होंने विद्रोही किसानों पर हमला करने के लिए सशस्त्र दलों का संगठन किया।

निहत्थे गरीब लोगों के लिए मिशनरी संस्थाओ को, जिन्हें मांचू अफ़सरशाही का समर्थन प्राप्त था और जो आधुनिक हथियारों से लैस थीं, देश से बाहर खदेड़ना कोई आसान काम नहीं था। इसलिए यि हो तुआन ने चीनी घूंसेबाज़ी तथा बल्लम और तलवार की लड़ाई के अभ्यास के लिए व्यायाम-केन्द्रों और अखाड़ों की स्थापना की (इसीसे विदेशी नाम 'बौक्सर' पड़ा)। उन्होंने लोगों को एकत्रित और संगठित करने के लिए धार्मिक समारोहों का उपयोग किया।

निश्चय ही ये तरीके बहुत ही भौंडे और आदिकालीन थे। परन्तु उत्पी-

ड़ित किसान उस समय इससे बेहतर कुछ और सोच भी नहीं सकते थे। मुख्य चीज़ यह थी कि अंध-विश्वास के बाहरी रूपों और व्यायाम के परम्परागत अभ्यासों का प्रयोग इस देशभक्तिपूर्ण, साम्राज्य-विरोधी संघर्ष में लोगों को एक सूत्र में बांधने और उनमें विश्वास की लहर फूकने के लिए किया जाता था। इस आधार पर, यि हो तुआन शान्तुंग में दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक्की करने लगा। एक साल मे भी कम में चिह्पिग काउण्टी के तमाम गांवों में, जिनकी संख्या ८०० से ऊपर थी, व्यायाम-केन्द्र स्थापित हो गये। यही हाल बहुत से अन्य स्थानों में भी हुआ।

मांचू सरकार के हथकंडे

स्थानीय मांचू अधिकारियों ने पहले तो यि हो तुआन को दबाने का प्रयत्न किया। सितम्बर १८९९ में, शान्तुग के सिविल गवर्नर यु श्येन ने पश्चिमी शान्तुंग की पिंगयुआन काउण्टी में उनके विरुद्ध एक काफ़ी बड़ी सेना भेजी, लेकिन वह बुरी तरह पराजित हुई। तब यह देख कर कि उसके भ्रष्टाचारी सैनिक इस प्रचण्ड क्रान्तिकारी शक्ति से टक्कर नहीं ले सकते, उसने दांव-पेचों की शरण ली। पिंगयुआन की लड़ाई के बाद उसने यह सुझाव रखा कि यि हो तुआन को स्थानीय आत्म-रक्षा दल के रूप में स्वीकार कर लिया जाएगा, पर शर्त यह है कि वे अपने नारे को "मांचुओं का विरोध करो" की बजाय "मांचुओं का समर्थन करो" कर दें। यि हो तुआन नेताओं का मुख्य लक्ष्य क्योंकि विदेशी आक्रमण और प्रभुत्व का प्रतिरोध करना था, इसलिए वे यु श्येन का सुझाव मान गये। इस प्रकार इस आन्दोलन ने शान्तुंग में अपनी गैर-कानूनी स्थिति से ऊपर उठ कानूनी दर्जा प्राप्त कर लिया। परन्तु यि हो तुआन ने किसी भी तरह सामन्ती शासकों के आगे आत्मसमर्पण नहीं किया। वह अपने आन्तरिक मामलों में सरकार का नियंत्रण मानने से बराबर इंकार करता रहा। जहां कहीं वह शक्तिशाली था, वहां उसने स्थानीय अधिकारियों पर अपने आदेश भी लागू किये और उच्च मांचू पदाधिकारियों का पालकियों में बैठ कर निकलना––जो उनके जन-साधारण से बड़े होने का चिह्न था––बंद कर दिया। उसने अधिकारियों को धार्मिक स्थानों के आगे झुकने के लिए बाध्य किया और कुछ को, जिनसे पीड़ित गरीब जनता विशेष रूप से घृणा करती थी, मृत्यु-दण्ड दिया।

साम्राज्यवादियों को जब पता चला कि शान्तुंग के अधिकारियों ने जनता के सामने घुटने टेक दिये हैं, तो उन्होंने तुरन्त हस्तक्षेप करने का फ़ैसला किया। चीन में अमरीका के मंत्री ई. एच. कोंगर ने मांचू सरकार को इस बात के लिए बाध्य किया कि वह यु श्येन को शान्तुंग से वापस बुलाए और युआन

शिह-काइ को वहां का गवर्नर नियुक्त करे। युआन साम्राज्यवादियों का एक वफ़ादार गुर्गा था। यह वही जनरल था जो १८९८ के सुधारवादियों के साथ गद्दारी कर दरबार के सामन्ती गुट के साथ जा मिला था। उसने अपने पद पर आसीन होते ही, यि हो तुआन के विरुद्ध नयी सेना भेजी जो विदेशी साज़ो-सामान से लैस थी और ख़ुद उसके द्वारा प्रशिक्षित की गयी थी। उसने त्सिंग-ताओ में टिकी जर्मन सेनाओं और मिशन द्वारा संगठित ईसाइयों के सशस्त्र दस्तों के साथ मिल कर, यि हो तुआन पर हमला बोल दिया। उसमें यि हो तुआन की पराजय हुई और उसके शान्तुग के नेता चु हुंग-तेंग मौत के घाट उतार दिये गये। उसके बाद तो प्रान्त के विविध भागों में आम लोगों को गाजर-मूली की तरह काटा गया।

परंतु युआन का आतंकपूर्ण शासन क्रान्तिकारी आन्दोलन को नहीं रोक सका। १९०० की बसंत ऋतु में यि हो तुआन ने, जो इस बीच एक सेना जितना फैल गया था, अपनी तमाम टुकड़ियां--एक छोटे से अंश को छोड़--राजधानी प्रान्त चिहली (होपे) में भेज दीं। वहां जनता ने उसका फिर बड़े जोश से समर्थन किया और लोग उसमें भारी संख्या में भर्ती होने लगे। मई तक यह संगठन पेकिंग-टेंटशिन-पाओतिंग प्रदेश में फैल गया जो उस समय मांचू शासन का हृदय समझा जाता था। लाइशुइ काउण्टी की एक लड़ाई में इसने मांचू की एक बड़ी सेना को करारी हार दी।

इस विजय के बाद क्रान्ति की लहर चिहली प्रान्त के देहातों में दूर-दूर तक फैल गयी और शहरों में भी जा पहुंची। पेकिंग से ४६ मील दूर, चोचो और अन्य शहरी केन्द्र यि हो तुआन के अधिकार में आ गये। देहात के हज़ारों लोग--किसान, दस्तकार, नौजवान और औरतें तक--यि हो तुआन के अनुयायी बन गये। वे लाल या पीली पगड़ियां बांधे तलवारें और भाले लिये, बड़े-बड़े झंडों को लहराते मार्च करते थे। उन झंडों पर ये शब्द लिखे होते थे: "दिव्य आदेश के अनुसार कार्य करो, मांचुओं का समर्थन करो और विदेशियों का सफ़ाया करो।"

अच्छा अनुशासन

जैसा कि साम्राज्यवादी और मांचू उन्हें तिरस्कार से पुकारते थे, वह कोई 'भम्भड़' नहीं था। वैसे क्रान्तिकारी जनता सभी देशों में शासक वर्ग द्वारा इसी नाम से पुकारी जाती है। इसके विपरीत, जैसा कि मांचू सरकार तक ने अपने आन्तरिक आदेशों में माना है, उनका अनुशासन बहुत कड़ा था। फ़रवरी १९०१ में 'आत्म भर्त्सना' नाम से एक शाही आदेश जारी किया गया था, उसका एक अंश इस प्रकार है:

"नयी प्रशिक्षित शाही सेना ने (जो यि हो तुआन से लड़ने के लिए भेजी गयी थी––सं.) बहुत ही भद्दे अनुशासन का परिचय दिया। उसने स्थानीय लोगों की हत्या की और उनके साथ दुर्व्यवहार किया। उधर, यि हो तुआन डाकू अपने चर्च-विरोधी प्रचार पर ज़ोर देते रहे, उन्होंने स्थानीय लोगों के साथ कभी कोई दुर्व्यवहार नहीं किया। इस तरह, लोग सेना से डरने लगे और डाकुओं से प्रेम करने लगे। फल यह हुआ कि डाकुओं का असर बढ़ता गया और उनकी शक्ति अधिकाधिक मज़बूत होती गयी।"

यि हो तुआन इस बात का बड़ा ख़याल रखता था कि उसके अधिकृत इलाकों में शांत जनता और राह चलते यात्रियों को कोई नुकसान न पहुंचने पाए। उसकी घोषणाओं में एक तीव्र राष्ट्रीय भावना रहती थी। एक पर्चे में, जो टेंटशिन और पेकिंग में गुप्त रूप से बांटा गया था, कहा गया था :

"विदेशी पिछले चालीस साल से भी अधिक से चीन में आ कर हर कहीं उसके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप कर रहे हैं। उन्हें.....उनके देशों को खदेड़ देना चाहिए ताकि चीन को गुलामी और टुकड़े-टुकड़े होने से बचाया जा सके।"

एक अन्य पर्चे में यि हो तुआन ने बर्तानिया, फ्रान्स और ज़ारशाही रूस को चीन के कट्टर शत्रु बतलाया था। एक दूसरे पर्चे में यह मांग रखने का इरादा ज़ाहिर किया गया था कि तैवान, जिसे जापान ने हथिया लिया है, और जापान को अदा किया गया लड़ाई का हर्जाना चीन को लौटाया जाए। यि हो तुआन की एक 'भविष्यवाणी' में, जो पेकिंग के निकट एक गुफ़ा में पत्थर पर खुदी मिली है, 'शांति संधियों' (साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा चीन पर थोपी गयी असमान संधियों) को 'सब से घृणित वस्तु' कहा गया है। इस तरह, यि हो तुआन घोषणाओं की भाषा यद्यपि प्रायः रहस्यमय या अंधविश्वासपूर्ण होती थी, परन्तु राष्ट्रीय गौरव की भावना और चीन की प्रभुसत्ता के अपमान पर रोष उनमें सदा मौजूद रहता था।

क्रान्ति के इस तूफ़ान ने शाही दरबार को उसी तरह स्तब्ध और भयभीत कर दिया जिस तरह कि पहले शान्तुंग के स्थानीय अधिकारियों को किया था। जब दमन बेकार सिद्ध हुआ तो मांचुओं ने यु श्येन के हथकंडे दोहराये और यि हो तुआन एक बार फिर वैधानिक घोषित कर दिया गया। उनका लक्ष्य यह था कि अपने को ऐसे शक्तिशाली आन्दोलन की चोट से बचाया जाए; उसकी शक्ति दूसरी ओर खर्च होने दी जाए और उसे इतना कमज़ोर हो जाने दिया जाए कि उससे जिस तरह इच्छा हो निपटा जा सके।

यह दांव चलते हुए चिह्ली के वायसराय यु लु ने यि हो तुआन के नेताओं, त्साओ फ़ु-त्येन और चांग तेह-चेग को टेंटशिन बुलाया जहां उनका खूब आडम्बर और समारोह के साथ स्वागत किया गया। त्साओ फु-त्येन और एक अन्य नेता लि लाइ-चुंग से, पेकिंग में, विधवा राजमाता ने भी भेंट की। जून १९०० में यि हो तुआन के बीसियों हज़ार अनुयायी टेंटशिन और पेकिंग पहुच गये। मांचू उन पर अपना नियंत्रण कायम नहीं कर सके।

यि हो तुआन ने टेटशिन के विदेशी क्षेत्रों और राजधानी के 'दूतावास क्षेत्र' के चारों ओर घेरा डाल दिया। उन्होंने मिशनरी संस्थाओं पर हमला किया और रेल व तार की लाइनों को, जो दमन के लिए प्रयुक्त होती थी और जिन्हें वे विदेशी शासन के प्रवेश का प्रतीक समझते थे, नष्ट कर दिया। उन्होंने कुछ सरकारी दफ़्तरों को भी जलाया और कुछ भ्रष्टाचारी अधिकारियों को मृत्यु-दण्ड भी दिया। मांचू शासकों के राज्य का पूरा सामंती ढांचा ही उनके कारण संकट में पड़ गया।

साम्राज्यवादियों का हस्तक्षेप

यि हो तुआन आन्दोलन के इस द्रुत विकास से साम्राज्यवादी स्तम्भित रह गये। जब 'बौक्सर' आन्दोलनकारी, दल के दल, पेकिंग में ही घुसने लगे तो साम्राज्यवादी दूतों ने तुरन्त ही विदेशी सेनाए मंगवायीं। टेंटशिन में कोई २००० सैनिकों की एक अन्तर्राष्ट्रीय सेना तैयार की गयी जिसका नाम बर्तानवी कमाण्डर एडवर्ड सेमूर के नाम पर 'सेमूर कॉलम' पड़ा। १० जून को यह सेना पेकिंग की ओर रवाना हुई। लेकिन यि हो तुआन ने रेलमार्ग नष्ट कर दिया और शत्रु को मार्ग में ही रोकने के लिए भीषण संघर्ष किया। सेमूर कॉलम को टेंटशिन से कोई चालीस मील दूर लांग फ़ाग पहुचने के बाद, आतंकित हो, वापस लौटना पड़ा। बाद में कमाण्डर सेमूर ने यह स्वीकार किया कि यदि 'बौक्सर' विद्रोहियों के पास पश्चिमी ढंग का तोपखाना होता तो उनकी सेना का बिल्कुल सफ़ाया हो जाता।

इसके बाद बर्तानिया, अमरीका, फ्रान्स, जर्मनी, ज़ारशाही रूस, जापान, इटली और आस्ट्रिया ने चीन पर एक बड़ा धावा बोलने के लिए एक संयुक्त साम्राज्यवादी सेना सगठित की। १७ जून को, तोपों की एक भयंकर झड़प के बाद, उस आक्रामक सेना ने टेंटशिन के समुद्री मार्गों की रक्षा करने वाली ताकू बंदरगाहों पर कब्ज़ा कर लिया और वह शहर की ओर बढ़ी। ताकू पर आक्रमणकारियों का अधिकार हो जाने से यि हो तुआन देशभक्तों और आम जनता में भारी उत्ते-

जना फैल गयी। टेंटशिन सैनिक अकेडमी के शिक्षार्थियों ने, क्रोध से पागल हो, विदेशी क्षेत्रों की रक्षा-सेना पर गोली चला दी। जनता की उस दिन-प्रति-दिन बढ़ती, साम्राज्य-विरोधी भावना ने २१ जून को विधवा राजमाता को साम्राज्य-वादी शक्तियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने को बाध्य कर दिया।

यि हो तुआन ने टेंटशिन में आक्रमणकारियों के विरुद्ध डट कर संघर्ष किया। न्येह शिह-चेंग जैसे मांचू सेनापतियों ने भी नगर की प्रतिरक्षा में भाग लिया। कोई एक महीने तक इस बंदरगाह के लिए खूनी लड़ाई चलती रही। १४ जुलाई को, कुछ मांचू दस्तों की तोड़-फोड़ की कार्यवाहियों और यि हो तुआन के घटिया हथियारों व ढीले-ढाले संगठन के कारण, आक्रमणकारी परकोटे से घिरे टेंटशिन शहर को अपने अधिकार में करने में सफल हो गये। चीनियों के विकट प्रतिरोध के कारण, साम्राज्यवादियों ने एक अत्यन्त शक्तिशाली सेना बिना पेकिंग की ओर रुख करना ठीक न समझा। इसलिए वे कोई तीन सप्ताह तक टेंटशिन में ही टिके रहे और जब उनके पास ४०,००० सैनिक हो गये तभी उन्होंने राजधानी की ओर कूच किया। यि हो तुआन ने भारी कठिनाइयों का सामना करते हुए हर कदम पर उनका कड़ा मुकाबला किया।

परन्तु जब साम्राजी सेना की प्रगति से यह स्पष्ट हो गया कि वह शीघ्र ही पेकिंग पहुंच जाएगी तो विधवा राजमाता ने पैतरा बदला। उसने लि हुंग-चांग को, जो एक कुख्यात साम्राज्यपक्षी था, आदेश दिया कि वह आक्रमण-कारियों से सुलह की बातचीत करने की तैयारियां करे। साथ ही, उसने आज्ञा दी कि पेकिंग के 'दूतावास क्षेत्र' पर हमला बंद कर दिया जाए।

विश्वासघात

मांचुओं के इस तरह गद्दारी कर गिरगिट की तरह रंग बदल लेने से यि हो तुआन दो पाटों के बीच आ गया। ऐसी हालत में आक्रमणकारी सेना १४ अगस्त १९०० को पेकिंग में दाखिल होने में कामयाब हो गयी और जल्दी ही उसने पाओतिंग, चांगक्याको (कालगान), शान्हाइक्वान, त्सांगचो और दूसरे शहरों को कब्ज़े में करने के लिए अपनी टुकड़ियों को चारों ओर फैला दिया। उधर, ज़ारशाही रूस ने इस स्थिति से लाभ उठाते हुए एक और सेना अपनी सीमा के पार उत्तरपूर्वी चीन में भेज दी।

उत्तरी चीन में हर कहीं जनता ने बहादुरी से मुकाबला किया। यि हो तुआन ने, जनता के दूसरे सशस्त्र दस्तों के साथ मिल कर, पाओतिंग और चांग-क्याको की ओर बढ़ते हुए, साम्राज्यवादी सेनाओं पर छापे मारे और उन्हें भारी

नुकसान पहुंचाया। क्रान्तिकारी किसान 'मित्र-सेना' की संचार-लाइनों को बराबर संकट में डालते रहे और उसे परेशान करते रहे। उत्तरपूर्वी चीन में ज़ार की सेना का भी कड़ा मुकाबला किया गया। यह सब उस समय किया जा रहा था जब मांचू सरकार ने विदेशी आक्रमणकारियों के आगे बेशर्मी से घुटने टेक दिये थे और वह जनता के विरुद्ध खुद सैनिक कार्यवाहियां करने लगी थी। विधवा राजमाता ने पेकिंग से सियान भाग कर 'डाकुओं के दमन' का एक आदेश जारी किया। उसमें उन्होंने मांचू सेना को आज्ञा दी कि वह 'मित्र सेना' के साथ मिल कर कार्य करे और यि हो तुआन को जहां भी पाए मौत के घाट उतार दे। पेकिंग पर विदेशियों का अधिकार हो जाने के बाद, शीघ्र ही, उसके दूत लि हुंग-चांग ने शांति के लिए बातचीत शुरू कर दी।

यि हो तुआन आन्दोलन चिहली में ज़ोर पकड़ रहा था और किसान दूसरे प्रान्तों में साम्राज्यवादियों और मांचुओं के खिलाफ़ सशस्त्र संघर्ष कर रहे थे। उत्तरपूर्व में तथा क्यांगसु, आन्हवे, हूपे:, फ़ुक्येन, शेचुआन, क्वांगतुंग, क्वांगसी, युन्नान, जेहोल, चहार, सुइयुआन और होनान प्रान्तों में, गिर्जाघर तोड़े जा रहे थे और साम्राज्य-विरोधी पर्चे बांटे जा रहे थे। चेकियांग के क्रांतिकारी किसानों ने कुछ समय के लिए क्यांगशान, चांगशान और काइह्वा की तीन पहाड़ी काउण्टियों पर कब्ज़ा कर लिया।

पर, इन प्रान्तों के वायसराय और गवर्नर देशभक्ति के उन स्थानीय आन्दोलनों को कुचलने के लिए विदेशी आक्रमणकारियों के साथ बराबर सहयोग करते रहे। फल यह हुआ कि उनका बड़े पैमाने पर विकास न हो सका। जुलाई १९०० में ही, जब चीन ने औपचारिक रूप से लड़ाई छेड़ रखी थी, क्यांगसु, आन्हवे और क्यांगसी प्रान्तों के वायसराय ल्यु कुन-यि तथा हुनान और हूपे: के वायसराय चांग चिह-तुंग ने शंघाई के विदेशी कौंसलों के साथ एक संधि कर ली जिसकी शर्तें ये थीं कि विदेशी शक्तियां शंघाई की विदेशी बस्तियों की संयुक्त रूप से 'रक्षा' करेंगी तथा वायसराय अपने प्रान्तों और वहां के विदेशी नागरिकों के जान-माल की 'रक्षा' करेंगे।

जब पेकिंग पर 'मित्र सेना' का अधिकार हो गया तो यि हो तुआन को चिहली में भी, भीतरी प्रतिक्रियावादियों और आक्रमणकारियों---दोनों का दबाव पड़ने के कारण, देहात की ओर पीछे हटना पड़ा और छोटे-छोटे दस्तों में संघर्ष करना पड़ा।

साम्राज्यवादी सभ्यता

साम्राज्यवादी एक ओर यि हो तुआन आन्दोलन को खून में डुबो रहे

थे और दूसरी ओर 'बौक्सर अत्याचारों' की झूठी रोमांचकारी कथाओं का प्रचार कर रहे थे। यह सब अपने हस्तक्षेप को, जिसे वे 'बर्बरता के विरुद्ध सभ्यता का युद्ध' कहते थे, उचित ठहराने के लिए किया जा रहा था। लेनिन ने अपने तीखे शब्दों में इस पाखण्ड का भण्डा फोड़ा था और उस समय लिखा था :

"हां ! यह सच है कि चीनी यूरोपियनों से घृणा करते हैं, लेकिन वे किन यूरोपियनों से घृणा करते हैं और क्यों करते हैं ? चीनियों को यूरोप की जनता से घृणा नहीं है, उनकी उससे कभी कोई लड़ाई नहीं हुई। वे यूरोपियन पूंजीपतियों से घृणा करते हैं और यूरोपियन सरकारों से घृणा करते हैं जो पूंजीपतियों के इशारों पर नाचती हैं। जो लोग चीन में सिर्फ मुनाफ़े के लिए आये हैं, जो अपनी इस आसमान पर उठायी हुई सभ्यता का उपयोग केवल छल-कपट, लूट और हिंसा के लिए करते रहे हैं, जो अफ़ीम के व्यापार का अधिकार प्राप्त करने के लिए और लोगों को इस दुर्व्यसन का शिकार बनाने के लिए चीन के खिलाफ़ लड़ाई छेड़ चुके हैं, और जिन्होंने लूट-खसोट की अपनी इस नीति को पाखण्ड के साथ ईसाइयत का जामा पहना रखा है, भला चीनी उन लोगों से घृणा किये बिना कैसे रह सकते हैं ?"

मार्क ट्वेन जैसे पश्चिम के कुछ जनवादी लेखकों ने भी उस हस्तक्षेप के असली रूप को सामने रखा और उनके दावों की कलई खोली।

वस्तुतः, चीनी जनता का क्रोध साम्राज्यवाद के ही विरुद्ध था। 'विदेशियों का सफ़ाया करने' से यि हो तुआन का अभिप्राय साम्राज्यवादियों को चीन की भूमि से बाहर खदेड़ना था। यह चीज़ एक नोट से, जो यि हो तुआन ने टेंटशिन के गिर्जाघरों को भेजा था, बिल्कुल साफ़ हो जाती है। उसमें लिखा था : "ईसाई गिर्जाघरों को चेतावनी दी जाती है कि उनके तमाम कर्मचारी, एक सप्ताह के अन्दर, वहां से चले जाएं। इसके बाद ये गिर्जाघर यि हो तुआन के लिए उपासना-स्थान बन जाएंगे।" 'लहू के प्यासे बौक्सर' केवल साम्राज्यवादियों की अपनी कल्पना थी। आन्दोलन के प्रसार के बावजूद, जून १९०० तक, जब विदेशी शक्तियां चीन में सशस्त्र हस्तक्षेप कर रही थीं, केवल एक मिशनरी मारा गया था जो शान्तुंग प्रान्त का अंग्रेज़ पादरी एस० एस० ब्रुक्स था। वह भी, बर्तानिया के दो अन्य नागरिकों एच० डी० पोर्टर और सैम्युअल काउलिंग के प्रकाशित पत्रों के अनुसार, अचानक दुर्भाग्य का शिकार हो गया था।

चीन के लोगों पर बर्बरता का लांछन लगाने वाले 'सभ्यता के इन पूंजीवादी अग्रदूतों ने यि हो तुआन आन्दोलन का दमन करते समय जो कुछ किया,

उसीसे यह साफ़ पता चल जाता है कि वास्तविक बर्बरता किसकी ओर से बरती जा रही थी। आठ राष्ट्रों की 'मित्र सेना' के जर्मन प्रधान सेनापति फ़ील्ड मार्शल वॉन वैल्डरसी ने बाद में अपने संस्मरणों* में लिखा था :

"तीन दिन की उस बाकायदा लूट से (जिससे पहले व्यक्तिगत रूप से बहुत कुछ लूटा जा चुका था) सम्पत्ति को निश्चय ही भारी नुकसान पहुंचा होगा पर, नागरिकों के उस नुकसान का मोटा अन्दाज़ा लगाने की भी अभी तक कोई कोशिश नहीं की गयी। लूट की कला में प्रत्येक राष्ट्र दूसरे को अपने से चतुर सिद्ध कर रहा है, पर सचाई यह है कि वे सब के सब उस समय लूट में दीवानों की तरह जुटे हुए थे।" और यह भी कि

"देश को अब तक बर्बादी और लूट मे जो नुकसान पहुंचा है, उसका कभी सही अन्दाज़ा नही लगाया जा सकेगा, पर इसमें संदेह नहीं कि वह बहुत ही ज़बर्दस्त है।.....लूट के साथ-साथ दूसरी ज़्यादतियों--औरतों पर अत्याचार, सभी तरह की पाशविकता, हत्या और आग लगाने आदि की उद्धत कार्यवाहियों की भी कमी नही थी।" इसके अतिरिक्त, एक अंग्रेज़ बी० एल० पुटनम वीले ने, जो 'मित्र सेना' के हाथों हुई राजधानी की लूट में खुद शामिल था, अपनी पुस्तक 'पेकिंग के असंयत पत्र' में 'सहायता दल' के आगमन के सम्बन्ध में लिखा है :

"हमने तब सुना कि समुद्र से लेकर पेकिंग तक सैनिकों ने हर चीज़ लूट ली है; टेंटशिन के स्थानीय नगर में, जिसे नोच-नाच कर हड्डी की तरह साफ़ कर दिया गया है, सभी सैनिक पूरी तरह हाथों से निकल चुके है; और सैकड़ों वीभत्स काण्डों का पता चला है। टेंटशिन से सेना ने जिस राह मार्च किया है, उसके किनारे हर गांव की यही हालत की गयी है।" उसने हत्या के बहुत-से काण्डों की साक्षी दी है जिनमें से कुछ इस प्रकार है :

"फ्रांसीसी पैदल सेना के अगले दस्ते को राह में चीनियों का एक दल मिला ....अपनी मशीनगनों को उनकी ओर तान, वह उन्हें खदेड़ता हुए एक छोटी बंद गली में ले गया। तब वहां, उस पिंजरे में उन पर मशीनगनें दागी गयी.....और एक-एक आदमी कत्ल कर दिया गया।" उसने यह भी बताया है कि जो विदेशी सैनिक, गैर-फ़ौजी अफ़सर और कूटनीतिज्ञ बाद में आये उन्होंने इस लूट की किस तरह पूर्णाहुति की।

*** एक फ़ील्ड मार्शल के संस्मरण : एलफ्रेड काउण्ट वॉन वैल्डरसी की डायरी, पत्रों और संस्मरणों पर आधारित--फ्रैडरिक ह्विटे द्वारा सम्पादित और अनूदित, लन्दन हचिन्सन एण्ड कम्पनी, १९२४।**

"बाद में आने वालों ने. . . .उस स्थान को फिर लूटा-खसोटा। देर से आने के अपने नुकसान को पूरा करने के लिए उन्होंने दूर-दूर के स्थानों की लूट की। आंधी के ये आम कुछ मंत्रियों के भी हिस्से मे आये।"

इस तरह साम्राज्यवादियों ने १९०० में चीन में "सभ्यता के लिए संघर्ष किया"।

यि हो तुआन आन्दोलन की असफलता का मुख्य कारण यह था कि वह एक ऐसा किसान-युद्ध था जिसका नेतृत्व कोई उन्नत वर्ग नही कर रहा था––चीनी मज़दूर एक वर्ग की हैसियत से अभी तक इतिहास के रंगमंच पर नहीं उतरा था, और उस समय का नवजात पूंजीपति वर्ग यि हो तुआन के विरुद्ध था। अपने जटिल रचना-विधान, साम्राजी दमन की क्रूरता और कुछ सामन्ती कट्टरपंथियों की तिकड़मों के कारण, यि हो तुआन में एक रुझान यह था कि वह हर विदेशी चीज़ से घृणा करता था।

लेकिन इससे यि हो तुआन किसान विद्रोहियों और उनके उस महान देशभक्तिपूर्ण साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन का गौरव कम नहीं हो जाता। उसका एक ऐतिहासिक परिणाम यह निकला कि साम्राज्यवादियों ने यह चीज़ समझ ली कि चीनी जनता, जिसकी राष्ट्रीय परम्पराएं इतनी शानदार है, विदेशी आक्रमणकारियों को कभी भी अपने देश को पैरों तले रौंदने नही देगी। यि हो तुआन आन्दोलन से पहले साम्राज्यवादी चीन को विभाजित करने के वारे में बढ़-बढ़ कर बातें करते थे। पर, उसके बाद उन्होंने फ़ौरन ही अपना लहज़ा बदल दिया। वॉन वैल्डरसी को, जो यि हो तुआन का दमन करने वाली सेना का प्रधान सेनापति था, खुद यह स्वीकार करना पड़ा कि चीन के लोगों में एकता है। अपने संस्मरणों* में उसने अपने अनुभव को संक्षेप में इस प्रकार रखा है :

"इस दिव्य और गौरवमयी जाति के लोगों का मन स्वाभिमान की भावना से ओत-प्रोत है. . . .उनमें अपरिमित ओज और शक्ति है. . . .किसी भी यूरोपीय या अमरीकी राष्ट्र में या जापान में इतना बौद्धिक या सैनिक बल नहीं है कि वह संसार की चौथाई आबादी वाले एक ऐसे देश पर शासन कर सके। अतः, चीन के विभाजन की नीति किसी भी तरह व्यवहारिक नहीं है।"

यद्यपि यि हो तुआन आन्दोलन को अन्त में दबा दिया गया और १९०१ में पेकिंग में जो 'बौक्सर संधि' सम्पन्न हुई, उससे चीन को और भी अपमान सहना

* Denkwurdigkeiten des General-Feldmarschalls Alfred Grafen Von Waldersee., Deutsche Verlags-Anstalt, Berlin. 1923.

पड़ा व हर्जाने में एक ज़बर्दस्त रकम अदा करनी पड़ी, फिर भी यि हो तुआन के संघर्षों और बलिदानों ने चीन को उस समय एक उपनिवेश बनने से बचा लिया।

यि हो तुआन आन्दोलन चीन में पुराने ढंग का अन्तिम किसान-विद्रोह था। उसने सुन यात-सेन के नेतृत्व में होने वाली बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के लिए मैदान साफ़ कर दिया। साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध चीनी जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष, जो १८४० के अफ़ीम-युद्ध के बाद शुरू हुआ था, इसके बाद एक नये दौर में दाखिल हो गया।

('पीपुल्स चायना' अंक १३, १९५५)

१९११ की क्रान्ति

ल्यु कुइ-वू
(विज्ञान अकेडमी की तृतीय इतिहास इंस्टीच्यूट के सहायक अनुसन्धान सदस्य)

१६०० के बाद चीन की राजनीतिक परिस्थिति

चीनी जनता के देशभक्तिपूर्ण साम्राज्य-विरोधी आन्दोलन, यि हो तुआन को यद्यपि १९०० में बर्बरतापूर्वक कुचल दिया गया, फिर भी उसने महान राष्ट्रों की चीन को विभाजित करने की योजनाओं को सफल न होने दिया। परन्तु वह सामन्ती मांचू शासक गुट को, जिसका नेतृत्व विधवा राजमाता कर रही थी और जो राष्ट्रीय हितों और साधनों का पूर्णतः परित्याग कर साम्राजियों को प्रसन्न करने की चेष्टाओं में रत था, साम्राजी शक्तियों के हाथों में खेलने से न रोक सका। जहां ये शोषक स्वयं जनता का निर्मम शोषण कर रहे थे, वहां उन्होंने राष्ट्रीय वित्त पर आयात-निर्यात कर के एक विदेशी इंस्पैक्टर-जनरल का प्रभुत्व और राष्ट्रीय मुद्रा पर विदेशी बैंकों का नियंत्रण भी कायम हो जाने दिया। रेलों और खानों में साम्राजियों को एक के बाद दूसरी रियायत मिलती रही। पेकिंग में और पेकिंग से समुद्र-तट तक जाने वाली सड़कों पर विदेशी सेनाएं स्थायी रूप से टिका दी गयीं।

असंतुष्ट जनता के प्रकोप से बचने के लिए मांचू सरकार ने १९०६ में यह घोषणा की कि वह वैधानिक सरकार स्थापित करने की तैयारियां कर रही है। किन्तु यह घोषणा एक थोथी प्रतिज्ञा बनी रही। जनता का निर्दयता से उत्पीड़न होता रहा, आर्थिक दशा बिगड़ती गयी।

इसलिए, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि १९०१ से १९१० तक अनेक जन-विद्रोह हुए। ये विद्रोह मांचू सरकार की राष्ट्रीय उत्पीड़न और विदेशी आक्रमणकारियों के आगे घुटने टेकने की नीति के विरुद्ध स्वाभाविक विस्फोट थे।

सरकारी रिकॉर्ड के अनुसार, १९०३ में १९ किसान विद्रोह हुए और १९०४ में ५२। केवल १९१० में ही उत्पीड़क करों के विरुद्ध ८० से अधिक विद्रोह हुए। चांगशा (हुनान प्रान्त) के विद्रोह में उस वर्ष लगभग १०,००० लोगों ने

भाग लिया। इस विद्रोह में सरकारी दफ़्तरों, महसूल घरों और विदेशी फ़र्मों की एजेंसियों को जलाया या तोड़ा-फोड़ा गया। क्वांगसी प्रान्त में नाननिंग के इर्द-गिर्द हुए विद्रोहों में ६०,००० से अधिक लोगों ने हिस्सा लिया और वे कई दिनों तक सरकारी फ़ौजों का मुकाबला करते रहे। इनमें से अधिकांश विद्रोहों का संगठन विविध गुप्त दलों* द्वारा किया गया था।

१९वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में, क्रान्तिकारी जनतंत्र के महान योद्धा सुन यात-सेन (१८६६–१९२५) के नेतृत्व मे नयी शक्तियां उठीं। ये शक्तियां पूंजीपति वर्ग के निम्न स्तरों, नये राष्ट्रीय उद्योगपतियों और व्यवसायियों के हितों का प्रतिनिधित्व करती थीं, और इन्होंने मांचू सरकार को ख़त्म करने की मांग रखी। विशेष कर १९०० के बाद, देशभक्ति के आन्दोलन के विकास के साथ-साथ, अधिकाधिक बुद्धिजीवी, ख़ास कर निम्न-पूंजीपति वर्ग के बुद्धिजीवी, चीन की समस्याओं के क्रान्तिकारी समाधान की मांग करने लगे।

जहां कहीं स्वदेशी पूंजीवादी उद्योग और वाणिज्य तुलनात्मक रूप से अधिक विकसित थे, वहीं क्रान्तिकारी संगठन कायम होने लगे। उनमें से अधिक प्रसिद्ध संगठन निम्न थे: क्वांगतुग में शिंग चुंग हुइ (चीन पुनर्स्थापन लीग), क्यांगसु और चेकियांग में कुआंग फ़ू हुइ (पुनर्स्थापन लीग), हुनान में हुआ शिंग हुइ (चीन पुनर्जीवन लीग) और हूपे: में जिह चिह हुइ (दैनिक अध्ययन लीग)। ये संगठन सब-के-सब, विविध मांचू-विरोधी गुप्त दलों से सम्बन्धित थे और देशभक्ति तथा बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के आदर्शों के प्रसार के लिए प्रयत्नशील थे।

क्रान्तिकारी शक्तियों की ताकत धीरे-धीरे बढ़ रही थी, किन्तु विधान-वादियों की सरगर्मियां भी जारी थीं। वे सामन्ती ज़मींदारों, नौकरशाहों और बड़े व्यापारियों में से आये पूंजीपति वर्ग के उच्च स्तर का प्रतिनिधित्व करते थे। वे क्रान्ति-विरोधी और सुधारवादी थे और वस्तुतः मांचू शासन को बनाये रखने के पक्ष में थे। उन्होंने यह सुझाव रखा कि मांचू शासकों से यह मांग की जाए कि वे अपनी राजनीतिक शक्ति को अंशतः त्याग दें, पर इसके लिए केवल आवेदन-पत्र पेश किया जाए। वे उस आन्दोलन में भी शामिल हुए जो इस मांग के लिए चलाया गया था कि पूंजीपतियों को रेलों के निर्माण और खानों की खुदाई का अधिकार

*** इन गुप्त दलों में से बहुत से लोकप्रिय संगठन थे जिन्होंने सामन्ती और राष्ट्रीय उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष में हिस्सा लिया था, किन्तु उनके सदस्य विभिन्न वर्गों (किसानों और ज़मींदारों) से आये थे और इसलिए शासक वर्ग प्रायः उन्हें अपने उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त करने में सफल हो जाता था।**

दिया जाए। किन्तु उन्होंने ऐसा केवल इसलिए किया कि वह आन्दोलन पूंजीपति वर्ग के हितों के अनुकूल था। फिर भी, क्योंकि मांचू सरकार राष्ट्रीय हितों के साथ निर्लज्जतापूर्वक विश्वासघात कर रही थी और वैधानिक शासन की बात को बराबर टाल रही थी इसलिए उसके और विधानवादियों के बीच थोड़ा टकराव था। क्रान्तिकारियों ने मांचू सरकार को अलग-थलग करने और अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए इस परिस्थिति का लाभ उठाया।

तुंग मेंग हुइ

अगस्त १९०५ में, शिंग चुंग हुइ, कुआंग फ़ु हुइ और हुआ शिंग हुइ के सदस्यों की जापान में एक बैठक हुई और उन्होंने तीनों संगठनों के विलय का फ़ैसला किया। नये संगठन का नाम तुंग मेंग हुइ (क्रान्तिकारी लीग) रखा गया। उसके सदस्यों में विदेशों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी (इनकी संख्या सब से अधिक थी), प्रवासी चीनी पूंजीपति, मज़दूर और विविध मांचू-विरोधी गुप्त दलों के सक्रिय कार्यकर्ता शामिल थे। सुन यात-सेन को प्रधान और हुआंग शिंग (हुआ शिंग हुइ के नेता) को प्रधान सचिव चुना गया। उस समय से क्रान्ति का नेतृत्व, कमोबेश, केवल तुंग मेंग हुइ के हाथों में आ गया और क्रान्ति तेज़ी से आगे बढ़ने लगी।

तुंग मेंग हुइ का ध्येय मांचू परिवार को शासन-च्युत करना, चीन की पुनर्स्थापना करना, गणतंत्र कायम करना और भूमि-स्वामित्व में समानता लाना था। उसने १८वीं सदी में फ्रांस में हुई पूंजीवादी क्रान्ति के 'स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व' के महान नारे को भी अपनाया। तुंग मेंग हुइ के मुख-पत्र 'मिन पाओ' (लोक दूत) के प्रथम अंक में सुन यात-सेन ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, और उसमें राष्ट्रीयता, जनतंत्र और जनता की जीविका की अपनी तीन नीतियों और मांचू शासन को सशस्त्र क्रान्ति द्वारा उखाड़-फेंकने के पार्टी के दृढ़ संकल्प की घोषणा की। यह सब, जैसा कि लेनिन ने सुन यात-सेन के विचारों पर अपनी टिप्पणियों में कहा है, चीन के नवोदित पूंजीपति वर्ग की उस समय की प्रकृति का द्योतक था।*

१९०५ की रूसी क्रान्ति ने चीन के जनवादी आन्दोलन को महान उत्साह प्रदान किया। 'मिन पाओ' ने रूस की घटनाओं पर लगातार चित्र और लेख प्रकाशित कर रूसी क्रान्तिकारियों को श्रद्धांजलि अर्पित की। यह परिणाम निकाला

*** लेनिन—चीन में प्रजातंत्र और नेरोडिज़्म (१९१२)।**

गया कि चीन में जनवादी सरकार वैधानिक राजतंत्र द्वारा नहीं, बल्कि क्रान्ति द्वारा कायम की जा सकती है।

तुंग मेंग हुइ के सदस्य क्रान्तिकारी कार्यवाहियों को संगठित करने के लिए देश के विभिन्न भागों में फैल गये। उन्होंने अनेक सशस्त्र विद्रोहों में आगे बढ़ कर हिस्सा लिया, किन्तु जनता को ठीक तरह से संगठित न कर सकने और आवश्यक साधनों के अभाव के कारण ये विद्रोह असफल रहे। फिर भी क्रान्तिकारी विचार अपनी जड़ें जमाते गये और तुंग मेंग हुइ के राजनीतिक कार्यक्रम का विस्तृत प्रचार हुआ। तुंग मेंग हुइ की बहुत-सी प्रचार-पुस्तिकाएं गुप्त रूप से विद्यार्थियों और नयी सेना[1] के सैनिकों में इधर से उधर घूमने लगीं।

तुग मेंग हुइ ने क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों को देश के विभिन्न भागों में कई अन्य क्रान्तिकारी संगठन स्थापित करने की प्रेरणा दी। यांगत्ज़ी नदी की ऊपरी घाटी में कुंग चिन हुइ ('एक साथ बढ़ो' लीग), हूपे: में वेन श्वेह शेह (साहित्य संघ) और आन्हवे में यो वांग हुइ (राजा यो लीग) विशेष कर ऐसे संगठन थे[2]। वेन श्वेह शेह और कुंग चिन हुइ बाद में १९११ की क्रान्ति के आधार-स्तम्भ बने।

क्रान्ति का आरम्भ

१९११ के क्रान्तिकारी विस्फोट को जिस चिंगारी ने भड़काया, वह वस्तुत: रेलवे के स्वामित्व को चीनी हाथों में रखने का आन्दोलन था। यह आन्दोलन शेचुआन, हूपे:, हुनान और क्वांगतुग प्रान्तों में १९११ के आरम्भ में उठा।

१९वीं शताब्दी के अन्तिम काल में विदेशी पूंजी को कैण्टन-हांको और शेचुआन-हांको रेलवे के निर्माण का अधिकार दिया गया था। किन्तु १९०५ में, एक प्रमुख अधिकारी चांग चिह-तुग के सुझाव पर, मांचू सरकार ने उन्हें चीनी पूंजी से बनाने का फ़ैसला किया। रेलवे के शेयरों को बेचने के लिए सीधा रास्ता यह निकाला गया कि जिन चार प्रान्तों में से इन रेलों को गुज़रना था, उनके करों पर

---

१. नयी सेना आधुनिक शस्त्रों से लैस मांचू सरकार की एक सेना थी। इस सेना में अधिकतर भरती विद्यार्थियों और बुद्धिजीवियों में से हुई थी।

२. राजा यो दक्षिणी सुंग वंश (११२७–१२७९) का एक प्रसिद्ध सेनापति यो फ़े था जिसने विदेशी आक्रमण के विरुद्ध संघर्ष किया था। यह चीनी जनता का एक लोकप्रिय वीर था और राजा की पदवी इसे मृत्यु के बाद दी गयी थी।

एक अतिरिक्त कर लगा दिया गया। इस तरह स्थानीय भद्र लोक, व्यवसायी, ज़मींदार और किसान खुद-ब-खुद इन लाइनों के शेयर-होल्डर हो गये। जनवरी १९११ में सरकार ने, डाक और संचार मंत्री शेंग शुआन-ह्वाइ की सलाह पर, जो विदेशी पूंजीपतियों से गठजोड़ रखने वाला और उन पर आश्रित एक धनी व्यापारी था, बर्तानिया, अमरीका, जर्मनी, फ्रांस और जापान से भारी कर्ज़ा लिया। साथ ही उसने रेलवे पर 'राष्ट्रीय स्वामित्व' की अपनी नीति का ऐलान किया, जिसका अर्थ अब वास्तव में उन्हें विदेशी व्यवस्थापकों के हवाले करना था।

इस नये विश्वासघात ने देश भर में, ख़ास कर उन चार प्रान्तों के लोगों में जिनका इससे सीधा सम्बन्ध था, विरोध का एक तूफ़ान खड़ा कर दिया। पाओ लु तुंग चिह हुइ (रेलवे के स्वामित्व में जन-अधिकारों की सुरक्षा के लिए संगठन) का निर्माण हुआ। शेचुआन की जनता ने और भी ज़ोरदार कदम उठाया और सशस्त्र विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया। सितम्बर में उनकी टुकड़ियों ने विद्रोही किसानों की सहायता से शेचुआन प्रान्त की राजधानी चेंगतू पर घेरा डाल दिया। मांचू सरकार को विदेशी सहायता का भरोसा था और उसने इस विद्रोह को कुचल डाला।

इस दौरान में वेन श्वेह शेह, जो हूपेः प्रान्त में क्रान्तिकारी शक्तियों का आधार था, विद्रोह की सक्रिय तैयारियां कर रहा था। उसका कुंग चिन हुइ के साथ निकट सम्बन्ध था और कुंग चिन हुइ स्वयं हुनान और हूपेः के अनेक गुप्त दलों से सम्बन्धित था। वेन श्वेह शेह का नेतृत्व तुग मेंग हुइ के एक सदस्य च्यांग यी-वू कर रहे थे। वेन श्वेह शेह के लगभग ५,००० सदस्य थे जिनमें से अधिकांश नयी सेना के सिपाही थे। वह अच्छी तरह संगठित था, लगातार क्रान्तिकारी प्रचार करता रहता था और जनता में उसका प्रभाव था।

अगस्त १९११ में इन दोनों संगठनों ने विद्रोह का झण्डा बुलन्द करने का फ़ैसला किया। च्यांग यी-वू को प्रधान सेनापति चुना गया। उन्होंने तुंग मेंग हुइ के शंघाई-स्थित नेता हुआंग शिंग को भी एक संदेश भेजा कि वह आकर कार्यवाहियों का नेतृत्व करें। किन्तु उस वर्ष मार्च में क्योंकि कैण्टन में एक विद्रोह असफल हो चुका था, इसलिए तुंग मेंग हुइ के सदस्यों में कुछ मतभेद था और उनमें से अनेक क्रान्ति के भविष्य के बारे में आशंकित थे। इन शंकाओं से प्रभावित हो हुआंग शिंग ने हूपेः के अपने सहयोगियों को सावधान रहने की राय दी।

हूपेः में परिस्थिति गम्भीर होती गयी। नयी सेना की कुछ टुकड़ियों को हूपेः से शेचुआन और हुनान जाकर वहां के विद्रोहों को कुचलने का आदेश दिया गया।

इससे हूपे: की राजधानी वुचांग में सरकारी सेनाएं कमज़ोर पड़ जातीं, किन्तु साथ ही क्रान्तिकारी शक्तियां भी कमज़ोर पड़ जातीं क्योंकि उनमें से बहुत सारे लोग नयी सेना के सैनिक थे। हूपे: के क्रान्तिकारियों ने हुआंग शिंग की राय पर ध्यान न देने का फ़ैसला किया। उन्होंने विद्रोह की तिथि ११ अक्तूबर निश्चित कर दी।

विद्रोह की तैयारियों की खबर पाकर, हूपे: और हुनान के मांचू गवर्नर-ज़नरल जुई चेंग ने ९ अक्तूबर को एक सार्वजनिक तलाशी का ऐलान किया। च्यांग यी-वू ने परिस्थिति को हर घड़ी अधिक गम्भीर होते देख, उसी रात बारह बजे विद्रोह आरम्भ करने का फ़ैसला कर लिया। किन्तु उस फ़ैसले के अमल में आने से पहले ही, क्रान्तिकारियों के सदर दफ़्तर का पता चल गया और उस पर छापा पड़ गया। च्यांग मुश्किल से बच कर भाग पाये।

अगले दिन, १० अक्तूबर को, जुई चेंग ने दृढ़ और निर्मम कार्यवाही की। उन्होंने गिरफ़्तार क्रान्तिकारियों को तलवार के घाट उतारा और गिरफ़्तारियां जारी रखीं। नयी सेना के लोगों की चिंता बढ़ती गयी। उस रात नौ बजे सैपर बैटेलियन के दो सैनिकों, श्युंग पिंग-कुन और चिन चाओ-लुंग ने अपनी ही पहल-कदमी पर सक्रिय प्रतिरोध संगठित करने का फ़ैसला कर लिया। उन्होंने अपने अफ़सरों को गोलियों का निशाना बनाया। गोलियों की आवाज़ सुन दूसरी बैरकों के क्रान्तिकारी भी संघर्ष में कूद पड़े और विद्रोह आरम्भ हो गया। नयी सेना के क्रान्तिकारी सैनिकों ने अपनी बैरकों से निकल गवर्नर-जनरल के दफ़्तर पर हमला बोल दिया। जब उनकी तोपें छूटने लगीं तो जुई चेंग घबराकर नौ-सेना के एक जहाज़ में बैठ यांगत्ज़ी नदी की राह भाग निकले। पौ फटने तक वुचांग की फ़सीलों पर क्रान्तिकारी झण्डे लहराने लगे और यांगत्ज़ी के मध्य क्षेत्र का एक सबसे बड़ा शहर क्रान्तिकारी सेनाओं के हाथ में आ गया। तीन दिन के अन्दर-अन्दर उन्होंने हांको और हान्यांग शहरों पर भी कब्ज़ा कर लिया।

वुचांग के पतन के साथ क्रान्तिकारियों ने समस्त राष्ट्र को मांचू सरकार के खिलाफ़ विद्रोह करने का आह्वान दिया। वे एक क्रान्तिकारी सरकार की भी स्थापना करने लगे। किन्तु वे राजनीति में नौसिखिये थे। उन्होंने सोचा कि वुचांग में च्यांग यी-वू की अनुपस्थिति में नयी सरकार के नेतृत्व के लिए उन्हें किसी 'सम्मानित' व्यक्ति को चुनना चाहिए। विधानवादियों की सलाह पर, जो अब क्रान्ति के 'समर्थक' बन गये थे, उन्होंने मांचू सेना के एक ब्रिगेड-कमाण्डर ली युआन-हुंग को, जिसका क्रान्ति से कोई सम्बन्ध नहीं था, नयी सरकार के नेतृत्व के लिए चुना।

विधानवादियों के एक नेता, तांग हुआ-लुग को राजनीतिक विषयों के कमिश्नर के पद पर नियुक्त किया गया। इस तरह, सैनिक और राजनीतिक दोनों विषयों पर विधानवादियों और पुराने फ़ौजी अफ़सरों का नियंत्रण हो गया।

जनता मांचू सरकार से घृणा करती थी और उसने क्रान्तिकारी शक्तियों का बड़े जोश से समर्थन किया। लोगो ने स्वयं सैनिकों को रसद पहुंचायी, घायल सैनिकों की देखभाल की और दवा-दारू का इन्तज़ाम किया। जब नयी सरकार ने चार ब्रिगेडों की स्थापना के लिए भरती का आह्वान दिया तो मज़दूर, किसान और बर्ख़ास्त सैनिक भारी संख्या में भरती के लिए आये। पांच दिन के अन्दर-अन्दर चार ब्रिगेड खड़े हो गये और फ़ौरन मोर्चे पर पहुंच गये। क्रान्तिकारी सैनिकों और उनके किसान सहयोगियों ने मांचू फ़ौजों के जवाबी हमले का डट कर मुकाबला किया।

वुचांग विद्रोह की सफलता से देश भर में क्रान्तिकारी आन्दोलन में एक नयी शक्ति का संचार हुआ। दस दिन बाद हुनान के क्रान्तिकारियों ने वहां के विविध गुप्त देशभक्त दलों की सहायता से एक सफल विद्रोह का संगठन किया। अन्य प्रान्तों में भी इसी प्रकार की घटनाएं घटीं। नवम्बर तक १८ प्रान्तों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। केवल चार--चिहली (अब होपे), होनान, किरिन और हेलुगक्यांग--मांचू सरकार के प्रति नाम मात्र को वफ़ादारी बनाये रहे। किन्तु हूपेः की तरह सभी प्रान्तों में अनुदार तत्व नयी सरकार में मुख्य स्थानों पर कब्ज़ा करने में सफल हो गये। नौ प्रान्तों पर विधानवादियों का नियंत्रण था और अन्य आठ में जंगी सरदारों और पुरानी 'मन्दारिन' नौकरशाही ने आज़ादी की घोषणा कर दी।

अस्थायी संविधान और युआन शिह-काइ का षड़यंत्र

सुन यात-सेन १८९५ मे विदेश से क्रान्तिकारी कार्यवाहियों का संचालन कर रहे थे। जब उन्हें वुचांग विद्रोह की सफलता की ख़बर मिली तो वह तुरन्त अमरीका से यूरोप की राह चीन को रवाना हो गये। २५ दिसम्बर को वह शंघाई पहुंचे। १ जनवरी १९१२ को नानकिंग में उनके नेतृत्व में एक अस्थायी सरकार की स्थापना हुई।

लेकिन प्रान्तों की तरह अस्थायी सरकार में भी घरेलू मामलों, वित्त, उद्योग और संचार के महत्वपूर्ण मंत्रालयों के मुख्य पद विधानवादियों को मिल गये। जहां वे सुन यात-सेन को चीन के अस्थायी प्रधान के रूप में नाम मात्र का सहयोग दे रहे थे, वहां उनकी प्रतिष्ठा का प्रयोग जनता को धोखा देने और जंगी

सरदार युआन शिह्-काइ के साथ, जिसने उत्तर में अपनी जड़ें मज़बूत कर ली थीं, अपनी सांठ-गांठ छिपाने के लिए कर रहे थे।

दम तोड़ती, भ्रष्ट मांचू सरकार ने अपने बचाव के लिए आखिर युआन-शिह् काइ का ही हाथ पकड़ा। उसने युआन शिह्-काइ को विस्तृत अधिकार दिये। साम्राजी शक्तियों ने भी, मांचू सरकार की डावांडोल हालत देख, युआन शिह-काइ का समर्थन करना ही ठीक समझा। साम्राजियों और विधानवादियों के समर्थन का आश्वासन पा, युआन क्रान्तिकारियों से निपटने के लिए अपने बाज़ुओं में काफ़ी ताकत महसूस करने लगा। वह फ़ौजी धमकियां देने लगा और राजनीतिक छल-कपट करने लगा। क्रान्ति की सफलता की आश्चर्यजनक तेज़ी ने तुंग मेंग हुइ के ढीले-ढाले संगठन में गड़बड़ पैदा कर दी थी। उसका एक नेता चांग ताइ-येन विधानवादियों से जा मिला। एक अन्य नेता वांग चिंग-वे युआन शिह्-काइ का पक्षपाती हो गया और सुन यात-सेन से त्यागपत्र दिलाने की हर मुमकिन कोशिश करने लगा। अन्य प्रमुख सदस्यों में से भी अधिकांश ताकत के नशे में स्वेच्छाचारी हो गये और ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करने लगे। पदवियों और भत्तों की घृणास्पद होड़ में उन्होंने अपने क्रान्तिकारी आदर्शों से विश्वासघात किया, और वे पुराने मांचू शासकों के समान ही भ्रष्ट रूप में सामने आये। सुन यात-सेन को युआन के पक्ष में अवकाश प्राप्त करना पड़ा। फिर भी, उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि गणतंत्रात्मक शासन कायम रखा जाए। इस ध्येय के लिए उन्होंने एक अस्थायी संविधान बनवाया और घोषित करवाया। अस्थायी संविधान में कहा गया था कि राष्ट्र के सभी लोग बराबर हैं, और उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जायदाद, निवास, भाषण, संगठन, पत्र-व्यवहार और धार्मिक विश्वास की स्वतंत्रता के अधिकार तथा आवेदन-पत्र देने, अपील करने और अफ़सरों पर मुकदमा चलाने के अधिकार प्राप्त होंगे।

'उत्तरी' और 'दक्षिणी' पक्षों की बातचीत के फलस्वरूप, फ़रवरी १९१२ में उत्तर के युआन शिह-काइ ने मांचू वंश को राज्य-सत्ता के परित्याग के लिए मजबूर किया और एक गणतंत्रात्मक ढंग की सरकार के 'समर्थन' की घोषणा की। सुन यात-सेन ने अस्थायी प्रधान के पद से इस्तीफ़ा दे दिया और अस्थायी सरकार की सेनेट ने युआन शिह्-काइ को चीन का प्रधान चुन लिया। इस प्रकार, चीनी जनता ने जिस क्रान्ति को अपने खून से सींचा था उसके फलों को प्रतिक्रियावादी जंगी सरदारों और सरकारी अफ़सरों ने हड़प लिया।

राज्य-सत्ता प्राप्त कर, युआन शिह्-काइ राष्ट्र की प्रभुसत्ता को साम्राजी

समर्थन के लिए दांव पर लगाने लगा। वह एक व्यक्तिगत तानाशाही कायम करने पर तुला था। प्रगतिशील शक्तियों को कुचलने के अपने षड़यंत्र के लिए, वह सैनिक दबाव, साज़िश, हत्या——सभी का प्रयोग कर रहा था। १९१३ तक उसने तुंग मेंग हुइ के स्थानीय प्रभाव को खत्म कर दिया, अस्थायी संविधान को रद्द कर दिया और संसद को बहुत-कुछ विघटित कर दिया। इसके बाद उसने सुन यात-सेन और हुआंग शिंग को 'विद्रोही' घोषित किया। १९११ की क्रान्ति के आदर्शों के साथ गद्दारी की गयी, और बड़े जागीरदारों व विदेशी पूंजी पर पलने वाले व्यापारियों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार कायम की गयी।

१९११ की क्रान्ति का सबक

साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध १८४० से चल रहे चीनी जनता के संघर्ष में १९११ की क्रान्ति उसका तीसरा बड़ा विद्रोह थी। किन्तु वह पूर्ववर्ती आन्दोलनों से——१८५१-१८६४ के ताइपिंग दिव्य राज्य की किसान क्रान्ति से और यि हो तुआन के साम्राज्य-विरोधी देशभक्तिपूर्ण आन्दोलन से, जिसे जनता ने १९०० में स्वयं आरम्भ किया था——प्रकृति में भिन्न थी। उसका नेतृत्व तुंग मेंग हुइ ने किया था जिसके नेता सुन यात-सेन थे और जिसका गठन निम्न-पूंजीपति वर्ग (अर्थात् उसके बुद्धिजीवियों) और अंशतः मांचू-विरोधी भद्र लोक के प्रतिनिधियों से हुआ था। उसका ध्येय मांचू सरकार को, जो सब से पिछड़ी सामन्ती शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती थी और आक्रमणकारी साम्राज्यवाद का हथियार थी, खत्म करना था और उसके स्थान पर एक बुर्जुआ जनवादी गणतंत्र कायम करना था। जैसा कि माओ त्से-तुंग ने 'युवक आन्दोलन की सही दिशा'* में कहा है, "डाक्टर सुन यात-सेन के साथ ही एक अपेक्षाकृत स्पष्ट बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ।"

१५ सितम्बर १९५४ को ल्यू शाओ-चि ने प्रथम राष्ट्रीय लोक कांग्रेस के पहले अधिवेशन में चीनी लोक गणतंत्र के प्रस्तावित संविधान पर रिपोर्ट पेश करते हुए १९११ की क्रान्ति के ऐतिहासिक महत्व को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया था :

"इस क्रान्ति ने, जो १० अक्तूबर १९११ को आरम्भ हुई, मांचू वंश के शासन को खत्म किया, चीन के उस सामन्ती राजतंत्र को खत्म किया जो दो

*** 'माओ त्से-तुंग की चुनी हुई रचनाएं', खण्ड ३, पृष्ठ १५। लंदन: लॉरेंस एण्ड विशार्ट लि०, १९५४।**

हज़ार वर्ष से भी अधिक से चला आ रहा था, चीनी गणतंत्र की और नानकिंग में सुन यात-सेन के नेतृत्व में क्रान्तिकारी अस्थायी सरकार की स्थापना की, और एक ऐसा 'अस्थायी संविधान' चालू किया जो एक पूंजीवादी गणतंत्र के संविधान जैसा था और प्रगतिशील महत्व रखता था। इस क्रान्ति ने एक जनवादी गणतंत्र के विचार को लोगों के मस्तिष्क में जमा दिया। इसने जनता में यह समझ पैदा कर दी कि इस विचार के विरुद्ध जो भी शब्द या कार्य होगा वह सर्वथा अवांछनीय होगा।"

१९१६ में युआन शिह-काइ ने गणतंत्र तो ख़त्म कर दिया और खुद सम्राट बनने की कोशिश की। किन्तु जनता के व्यापक विरोध के कारण यह षड़-यंत्र सफल न हो सका।

किन्तु १९११ की क्रान्ति खुद एक असफल क्रान्ति थी। जैसा कि ल्यु शाओ-चि ने कहा है, वह इसलिए असफल रही कि उस समय क्रान्तिकारियों के पास "कोई पूर्णतः साम्राज्य-विरोधी और सामन्त-विरोधी कार्यक्रम न था, न ही उन्होंने जन-शक्तियों को, जिन पर वे भरोसा कर सकते थे, एक विशाल आधार पर एकत्रित और संगठित किया था।" क्रान्तिकारियों ने साम्राज्यवाद के साथ समझौता कर लिया था। तुग मेंग हुइ ने अपनी स्थापना के समय एक कार्यक्रम अपनाया था जिसमें 'विदेशी राष्ट्रों के नाम एक ऐलान' शामिल था। इस ऐलान में यह घोषणा की गयी थी कि तुग मेंग हुइ असमान सन्धियों को मानने, विदेशी ऋणों को अदा करते रहने और विदेशियों को मिले अधिकारों व सुविधाओं की रक्षा करने को तैयार है। यह सब साम्राज्यवाद को प्रसन्न करने का प्रयास था।

सामन्तवाद के सम्बन्ध में तुग मेंग हुइ ने भूमि-स्वामित्व में समानता लाने के अपने इरादे की घोषणा अवश्य की, पर ऐसा करने के लिए उसके पास कोई विस्तृत कार्यक्रम न था। १९११ की क्रान्ति के दौरान में हूपेः और शेचुआन के किसानों ने भूमि-कर ख़त्म करने का सुझाव रखा, पर तुंग मेंग हुइ ने उनका समर्थन नहीं किया। यद्यपि तुंग मेंग हुइ को उसकी क्रान्तिकारी सरगर्मियों में गुप्त दलों से सहायता मिली थी, किन्तु वुचांग विद्रोह के बाद उसने हुंग मेन हुइ को, जो सब से बड़े गुप्त दलों में से था, 'उग्रता से काम न लेने' का आदेश दिया। तुंग मेंग हुइ ने जनता का समर्थन खो दिया, और उसकी स्थिति ऐसी हो गयी कि वह युआन शिह-काइ से टक्कर न ले सकता था। क्योंकि युआन शिह-काइ बड़े ज़मींदारों और विदेशी पूंजी पर पलने वाले व्यापारियों का राजनीतिक प्रतिनिधि था, साम्राज्यवादी उसका समर्थन कर रहे थे, उसकी कमान में एक शक्तिशाली क्रान्ति-विरोधी सेना थी

और विधानवादी उसके अनुयायी थे। इन परिस्थितियों में शत्रु के आगे आत्म-समर्पण अनिवार्य था, और उसने अन्त में क्रान्ति के फलों को हड़प लिया।

फिर भी, १९११ की क्रान्ति ने चीनी जनता की आन्तरिक शक्ति को एक बार फिर उजागर कर दिया। क्रान्ति के राष्ट्र-व्यापी ज्वार ने शाही मांचू वंश के शासन को भग्न, छिन्न-भिन्न और शक्तिहीन कर दिया, और वह अन्त में पूर्णतया ध्वस्त हो गया। चीनी पूंजीपति वर्ग ने अपनी कमज़ोरी के कारण, जनता को बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के अडिग संघर्ष के लिए संगठित करने की हिम्मत नहीं की। इसीलिए, वह साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के शासन को खत्म न कर सका। यह ऐतिहासिक कार्य अन्त में चीनी मज़दूर वर्ग के कन्धों पर पड़ा।

('पीपुल्स चायना' अंक २०, १९५५)

सुन यात-सेन—एक महान जनवादी क्रान्तिकारी

च्येन पो-त्सान

(पेकिंग विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष)

"चीनी जनता सुन यात-सेन का महान आदर करती है क्योंकि वह चीन की जनवादी क्रान्ति के अग्रदूत थे, क्योकि वह एक महान देशभक्त थे और उन्होंने अपना सारा जीवन मातृभूमि की मुक्ति और स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए अर्पित कर दिया था।" **चाउ एन-लाइ के भाषण से उद्धृत, जो उन्होंने डा० सुन यात-सेन की तीसवीं बरसी पर पेकिंग की एक सभा मे दिया था।**

ताइपिंग किसान-क्रान्ति की असफलता के कोई दो वर्ष बाद, १२ नवम्बर १८६६ को, कैण्टन के पास क्वागतुंग प्रान्त मे आजकल की चुंगशान काउण्टी के छोटे से सुन्दर गांव त्सुइहेंग में चीन के महान जनवादी क्रान्तिकारी सुन यात-सेन का जन्म हुआ। उनकी पत्नी सुग छिंग-लिंग ने उनके बचपन का उल्लेख करते हुए कहा है, "वह किसान वर्ग में से आये थे। उनके पिता एक किसान थे। सुन निर्धन थे। पन्द्रह वर्ष की आयु से पहले उन्होंने कभी जूते नहीं पहने थे। उनका परिवार एक झोंपड़े में रहा करता था और गुज़ारा बड़ी मुश्किल से होता था। उनकी मुख्य खुराक शकरकन्दी थी।"*

बचपन में सुन को ताइपिंग क्रान्ति की कहानियां सुनने का बहुत शौक था। उनके हृदय में ताइपिंग नेता हुंग श्यु-चुआन के लिए गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। यह कहा जा सकता है कि उनमें क्रान्तिकारी विचारों का बीज उसी समय पड़ गया था।

सुन यात-सेन का बड़ा भाई गरीबी से तंग आ, अपना घर छोड़ रोज़ी कमाने होनोलुलु चला गया। सुन यात-सेन भी बाद में उसके पास चले आये और एक ईसाई चर्च के स्कूल में शिक्षा पाने लगे। उसके बाद सुन हांगकाग जाकर चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन करने लगे। २६ वर्ष की आयु में, १८९२ मे वह स्नातक हो गये और बाद में मकाओ और कैण्टन में प्रैक्टिस करने लगे।

*** सूंग छिंग-लिंग कृत 'नये चीन के लिए संघर्ष', विदेशी भाषा प्रेस १९५२, पृष्ठ ३।**

शुरू की सरगर्मियां

सुन यात-सेन जब मैडिकल छात्र थे तभी सान हो हुइ (तिहैरी गुप्त लीग) के प्रमुख सदस्यों के सम्पर्क में आ गये थे। यह एक क्रान्तिकारी संगठन था जिसमें किसान और तत्कालीन चीनी समाज के निम्न वर्ग के लोग शामिल थे। यह संगठन दो सौ वर्षों से मांचू शासन का विरोध और हान जाति की राष्ट्रीय भावना का प्रतिनिधित्व करता आ रहा था। उसके राष्ट्रीय विचारों का प्रभाव सुन पर भी पड़ा।

पिछली शताब्दी के अन्तिम दशकों में चीन के बुद्धिजीवी वर्ग में सुधारवाद ज़ोर पकड़ने लगा था। इस आन्दोलन का उद्देश्य चीन में पूंजीवाद को विकसित करना था। इसके समर्थकों को आशा थी कि देश की भीतरी और बाहरी स्थिति को सरकारी सुधारों द्वारा संकट मे उबारा जा सकता है। सुन भी कुछ समय तक सुधारवादी विचारों से प्रभावित रहे। १८९४ के आरम्भ में, उन्होंने सरकार के एक उच्च अधिकारी लि हुंग-चांग को एक प्रार्थना-पत्र भेजा जिसमें उन्होंने यह सुझाव पेश किया कि "देश को शक्तिशाली बनाने के लिए पश्चिम की नकल करनी चाहिए।" किन्तु लि ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

उसी वर्ष जापान ने चीन के विरुद्ध अपना पहला आक्रमणकारी युद्ध आरम्भ कर दिया। मांचू सरकार कितनी कमज़ोर और खोखली है, यह इससे पता चल गया कि चीनी सेना को जापानियों के आगे बार-बार मुंह की खानी पड़ी। राष्ट्र पर मंडराते उस संकट को देख कर सुन ने शीघ्र ही सुधारवाद से किनारा कर लिया और अपनी आशाएं क्रान्ति पर केन्द्रित कर दीं। १८९४ के अन्त में और १८९५ में उन्होंने होनोलुलु और हांगकांग में शि ा चिंग हुइ (चीन पुनर्स्थापन लीग) नाम का क्रान्तिकारी संगठन स्थापित किया जिसका नारा था : "मांचू सरकार को हटाओ और चीन को उसके स्थान पर फिर से प्रतिष्ठित करो।" १८९५ की शिशिर ऋतु में, जब शिमोनोसेकी की अपमान-जनक निकृष्ट संधि के कारण (जिसके द्वारा भ्रष्टाचारी मांचू सरकार ने तैवान और पेंघु द्वीप जापान को सौंप दिये थे) सारा देश उत्तेजित हो उठा था, सुन ने कैण्टन में एक सशस्त्र विद्रोह की तैयारी आरम्भ कर दी। किन्तु अभी पूरी तैयारी भी नहीं हो पायी थी कि सरकार ने, जिसे उसका पता चल गया था, उसे ख़त्म कर दिया। सुन को देश से निर्वासित होना पड़ा जहां वह बहुत वर्षों तक अपनी क्रान्तिकारी कार्यवाहियां करते रहे।

चीन-जापान युद्ध के बाद साम्राज्यवादी देशों ने चीन में अपनी आक्रमण-कारी कार्यवाहियां और तेज़ कर दीं। उन्होंने कई समुद्री अड्डों को अपने अधिकार में कर लिया; देश को कई 'प्रभाव-क्षेत्रों' में विभाजित कर दिया और वे उसके औपनिवेशिक बंटवारे की तैयारी करने लगे। उसी समय, १८९८ में, सुधारवादियों को, जो कुछ सीमा तक मांचू सम्राट को प्रभावित करने में सफल होने लगे थे, सामन्तवादी दकियानूसी अधिकारियों ने कुचल डाला और उनकी सारी योजनाएं व्यर्थ कर दी गयीं। १९०० में चीन के किसान खुद पहल-क़दमी कर विभिन्न स्थानों पर विद्रोह का झण्डा ऊंचा करने लगे, जो बाद में सामूहिक रूप से देशभक्तिपूर्ण साम्राज्य-विरोधी 'बौक्सर' विद्रोह में फूट पड़ा। किन्तु यह विद्रोह भी आठ साम्राज्यवादी देशों—संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन, जापान, जर्मनी, फ्रांस, ज़ारशाही रूस, इटली और आस्ट्रिया-हंगरी—के बर्बर सशस्त्र हस्तक्षेप द्वारा दबा दिया गया। १९०१ में एक और अपमानजनक संधि चीन पर जबर्दस्ती लाद दी गयी, जिसके अनुसार चीन को अनेक प्रकार की राजनीतिक, सैनिक और आर्थिक सुविधाएं साम्राज्यवादी देशों को देनी पड़ीं। इसके अलावा, चीन को हर्जाने के रूप में भारी रकमें भी अदा करनी पड़ीं जो उसके हितों के लिए बहुत ही घातक सिद्ध हुई। इन सब घटनाओं से चीन के पूंजीपति और निम्न-पूंजीपति वर्ग के बुद्धिजीवियों की ज़्यादा-से-ज़्यादा संख्या इस नतीजे पर पहुंचने लगी कि राष्ट्र की रक्षा क्रान्ति द्वारा ही संभव है। इसी उद्देश्य को लेकर देश में बहुत-से छोटे-छोटे गुप्त संगठन खड़े हो गये।

तुंग मेंग हुइ

चीन के क्रान्तिकारियों को १९०५ की रूसी क्रान्ति से बड़ी प्रेरणा मिली। उसी वर्ष कई क्रान्तिकारी संगठन, जिनमें सब से प्रमुख शिंग चुंग हुइ था, तुंग मेंग हुइ (चीनी क्रान्तिकारी लीग) में शामिल हो गये। इस संगठन की उद्-घाटन-सभा जापान में हुई जहां उस समय बहुत से चीनी विद्यार्थी और देश से निर्वासित राजनीतिक कार्यकर्ता मौजूद थे। सुन यात-सेन इसके अध्यक्ष चुने गये।

तुंग मेंग हुइ की स्थापना चीन की बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के विकास में एक विशेष महत्व रखती है। अब तक शिंग चुंग हुइ समेत तमाम क्रान्तिकारी संगठन छोटे-छोटे स्थानीय दलों में बिखरे हुए थे। लेकिन तुंग मेंग हुइ, इस के विपरीत, बहुत-कुछ उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के क्रान्तिकारी बुर्जुआ राजनीतिक दलों की तरह था। यह संयुक्त मोर्चे के ढंग का संगठन था जिसमें बुर्जुआ उदारपंथी, निम्न-बुर्जुआ उग्रपंथी और मांचू-विरोधी राष्ट्रवादी भद्र लोक का

एक अंश शामिल था। चीन के इतिहास में पहली बार इस संगठन ने क्रान्तिकारी विचारधारा को अपने राजनीतिक कार्यक्रम का अंग बनाया। इस विचारधारा को सुन यात-सेन ने प्रतिपादित किया और यह सान मिन चू यि या 'तीन जनवादी सिद्धान्त'––राष्ट्रवाद, जनतंत्र, आजीविका––के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। इस विचारधारा पर आधारित नीति उस शपथ में निहित थी जो तुंग मेंग हुइ संगठन में शामिल होने से पहले प्रत्येक सदस्य को लेनी पड़ती थी। उन्हें प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वे "मांचू सरकार को हटाएंगे, चीन को उसके स्थान पर फिर से प्रतिष्ठित करेंगे, गणतंत्र का निर्माण करेंगे और भूमि को बराबर-बराबर बांटेंगे।" इस तरह सुन सब से पहले राजनीतिक नेता थे जिन्होंने बुर्जुआ जनवादी गणतंत्र का लक्ष्य निर्धारित किया। इससे चीन के बौद्धिक जीवन और विचारक्षेत्र में उस समय एक ज़बर्दस्त परिवर्तन होने लगा।

अफ़ीम-युद्ध (१८४०–१८४२) से लेकर अब तक, चीनी जनता का साम्राज्यवाद और प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध जो संघर्ष था, वह खुद-ब-खुद पैदा हुआ था। अब वही संघर्ष एक शक्तिशाली जनवादी क्रान्ति का रूप धारण करने लगा।

तुग मेंग हुइ ने एक तरफ़ सुधारवादी वैधानिक राजतंत्रवादी पाओ हुआंग तांग ('सम्राट रक्षा दल') के विरुद्ध कठोर संघर्ष आरम्भ कर दिया, दूसरी तरफ़ उसके सदस्य चीन के कोने-कोने में जाकर क्रान्ति का प्रचार और उसकी तैयारी करने लगे। तुंग मेंग हुइ की स्थापना हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि उसके दस हजार से अधिक सदस्य बन गये और अधिकतर प्रान्तों में उसकी शाखाएं स्थापित हो गयीं। क्यांगसी, क्वांगतुग, क्वांगसी और युन्नान में उसके द्वारा अनेक विद्रोह संगठित किये गये। मार्च १९११ में कैण्टन में बड़े पैमाने पर एक सशस्त्र विद्रोह हुआ जिसमें उसके कई अत्यन्त योग्य सदस्यों ने भाग लिया। लेकिन तुंग मेंग हुइ के सदस्यों की भारी संख्या निम्न-पूंजीपति वर्ग के बुद्धिजीवियों की थी जो आम जनता के व्यापक अंगों, विशेषकर किसानों को एकत्रित और संगठित करने के महत्व को नहीं जानते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि ये सभी विद्रोह असफल हुए और बहुत से क्रान्तिकारी वीरों को शहीद होना पड़ा।

इन असफलताओं के बावजूद, तुंग मेंग हुइ की कार्यवाहियों से सभी क्षेत्रों के लोगों की क्रान्तिकारी भावना अत्यधिक गहरी होती गयी। अनेक चीनी बुद्धिजीवी गुप्त संगठनों में शामिल हो गये और मांचू सरकार की सेना में भी घुस कर क्रान्ति का प्रचार और संगठन करने लगे।

१९११ की क्रान्ति

१० अक्तूबर १९११ को वुहान के सैनिक दस्तों ने, क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में, मांचू सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। देश के बहुत-से भागों में जनता और सेना ने उनका अनुकरण किया। यह थी १९११ की क्रान्ति जिसने २००० वर्ष से भी अधिक पहले से चली आती सामन्तवादी राजतंत्र की व्यवस्था को ख़त्म कर दिया। चीनी जनता के हृदय में जनवादी गणतंत्र का विचार इसने हमेशा के लिए मज़बूती के साथ जमा दिया। इस प्रकार यह क्रान्ति एक महान ऐतिहासिक महत्व की घटना बन गयी।

१९११ में सुन यात-सेन सोलह साल के निर्वासन के बाद स्वदेश लौटे। १९१२ के नये वर्ष के दिन चीनी गणतंत्र की औपचारिक रूप से घोषणा कर दी गयी और सुन यात-सेन उसके अस्थायी प्रधान नियुक्त हुए। शीघ्र ही प्रधान सुन ने एक 'अस्थायी संविधान' घोषित किया, जो पूंजीवादी गणतंत्र पर आधारित था।

इतनी तीव्र गति से होने वाली घटनाओं ने क्रान्ति के बहुत से नेताओं को चकाचौंध कर दिया और उनमें अपनी विजय के प्रति एक खुशफ़हमी पैदा हो गयी। उन्होंने सोचा क्रान्ति सफल हो गयी है और वे काफ़ी निश्चिन्त हो गये। वास्तव में परिस्थिति अत्यन्त नाज़ुक और खतरनाक थी। सुधारवादी, पुराने जंगी सरदार और भूतपूर्व राज्याधिकारी क्रान्ति का दिखावटी 'समर्थन' करने दौड़ पड़े थे। वस्तुतः, उन्होंने विभिन्न प्रान्तों पर अपना अधिकार जारी रखा और वे क्रान्ति की जड़ें खोदने लगे। बहुत से स्थानों पर तो वे क्रान्तिकारियों की हत्याएं तक करने लगे। उन्होंने उत्तरी चीन के एक बड़े जंगी सरदार, युआन शिह-काइ के संग गठ-जोड़ कर लिया। साम्राज्यवादी और सामन्तवादी शक्तियां उसे अपने लिए उपयुक्त एक नया 'शक्तिशाली व्यक्ति' समझती थीं और उसकी सहायता करती थीं। युआन की चालबाज़ियों और धमकियों के कारण सुन यात-सेन ने अस्थायी प्रधान की पदवी से इस्तीफ़ा दे दिया। उसी वर्ष अप्रैल में युआन स्वयं प्रधान बन गया।

यद्यपि प्रतिकूल परिस्थिति तथा अनुभव और सूझ-बूझ की कमी के कारण सुन यात-सेन को अपना पद छोड़ना पड़ा, किन्तु जनवादी क्रान्ति के पथ से वह तनिक भी विचलित नहीं हुए। एक वर्ष बाद जब युआन शिह-काइ का क्रान्ति-विरोधी रूप बिल्कुल स्पष्ट हो गया तो सुन ने इस जंगी सरदार का दमन करने के लिए विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। १९१३ से १९१८ तक उन्होंने युआन शिह-काइ और उत्तरी चीन के उन दूसरे जंगी सरदारों

के विरुद्ध, जिन्हें साम्राज्यवादियों से सहायता मिलती थी और जो १९१६ में युआन की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी बन गये थे, कठोर संघर्ष किया।

पराजयों के बावजूद आशावादी

सुन ने क्वो मिन तांग दल के कार्य की भी समीक्षा की—१९१२ में तुंग मेंग हुइ का इसी दल में पुनर्गठन किया गया था। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि १९११ की क्रान्ति के बाद दल में नये सदस्यों को बड़ी संख्या में भरती करने से उसकी क्रान्तिकारी शक्ति क्षीण हो गयी है। अतः, १९१४ में उन्होंने उसका चुंग हुआ केह मिंग तांग (चीनी क्रान्तिकारी दल) में एक बार फिर पुनर्गठन किया। इस दल की सदस्यता की शर्तें अपेक्षाकृत कड़ी थीं।

इस दौर में सुन यात-सेन के नेतृत्व में चलने वाले क्रान्तिकारी संघर्ष का उद्देश्य 'अस्थायी संविधान' की, जिसे जंगी सरदारों ने टुकड़े-टुकड़े कर दिया था, और संसद की जिसे उन्होंने समाप्त कर दिया था, पुनर्स्थापना करना था। इस तरह, गणतंत्र की पुनर्स्थापना के सम्बन्ध में सुन यात-सेन का उद्देश्य मुख्यतया उसकी प्रतीक संस्थाओं की पुनर्स्थापना था। परन्तु उसके संग कोई स्पष्ट सामन्त-विरोधी और साम्राज्यवाद-विरोधी राजनीतिक कार्यक्रम पेश नहीं किया गया। अतः, जनता का उत्साह ठंडा पड़ने लगा। चीन के क्रान्तिकारी दल का जनता से सम्पर्क भी ढीला होता गया।

दक्षिणी चीन के स्थानीय जंगी सरदार अवश्य सुन यात-सेन की सहायता के लिए तैयार हो गये, क्योंकि उनके नाम से उन्हें उत्तरी चीन के जंगी सरदारों के विरुद्ध अपने संघर्ष में मदद मिलती थी। किन्तु जब इन दोनों सैन्यवादी गुटों का आपस में अस्थायी समझौता हो गया, तो सुन को इन अविश्वसनीय 'सहायकों' से मदद मिलनी बन्द हो गयी। १९१८ में उन्हें कैण्टन की उस सैनिक सरकार से हटना पड़ा जो एक वर्ष पूर्व दक्षिणी चीन के जंगी सरदारों के सहयोग से बनायी गयी थी।

अपनी पराजय से वह यह अच्छी तरह समझ गये कि मौलिक परिवर्तन लाने के लिए एक नयी क्रान्ति आवश्यक है। १९१९ में उन्होंने चीनी क्रान्तिकारी दल का चीनी क्वोमिन्तांग के नाम से पुनर्गठन किया। पर, कोई नया कार्यक्रम फिर भी पेश नहीं किया गया। १९२१ के अन्त में उन्होंने क्वांगतुंग प्रान्त के एक नये जंगी सरदार चेन चियुंग-मिंग की सहायता से कैण्टन में एक और सरकार स्थापित की जिसके वह संकटकालीन प्रधान नियुक्त हुए। किन्तु यह सरकार बहुत दिन नहीं चल पायी। चेन चियुंग-मिंग ने साम्राज्य-

वादियों से रिश्वत खा और उत्तरी चीन के जंगी सरदारों के संग साठ-गांठ कर, १६ जून १९२२ को अचानक प्रधान-भवन पर सशस्त्र आक्रमण कर दिया। सुन बाल-बाल बचे और उन्होंने भाग कर एक जंगी जहाज़ में शरण ली।

१८९४ में पहली बार क्रान्तिकारी आन्दोलन में कदम रखने के बाद से ही सुन को बराबर कठिनाइयों के बीच संघर्ष करना पड़ा। एक के बाद एक असफलता आयी, किन्तु उन्होंने कभी मुह पीछे नहीं मोड़ा। एक बार उन्होंने अपने मित्रों से कहा था "क्रान्ति चाहे कितनी ही बार असफल क्यों न हो, मैं तो उसकी सफलता की ही इच्छा करता रहूंगा। इसलिए संघर्ष के सिवा मेरे आगे कोई और चारा नहीं है।" बार-बार हार खा कर भी उनकी हिम्मत कभी नहीं छूटी। वह प्रत्येक असफलता से कुछ निष्कर्ष निकालते थे और अपने काम को बेहतर बनाने की चेष्टा करते थे। अन्त में उन्हें वह रास्ता मिल ही गया जिस पर चल कर क्रान्ति विजय और सफलता की मंज़िल पर पहुंच सकी।

तीन नीतियां

१९१७ में रूस में महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति हुई जिससे विश्व भर में एक नया युग आरम्भ हुआ। रूसी क्रान्ति का गहरा प्रभाव चीन की राजनीति पर भी पड़ा। सुन यात-सेन की रूस के क्रान्तिकारी अन्दोलन से पुरानी सहानुभूति थी और वह उसकी प्रगति को ध्यान से देख रहे थे। उन्होंने सोवियत सत्ता की स्थापना का बड़े उत्साह से स्वागत किया। उन्होंने कहा, "रूस को क्रान्ति समूची मानवता को एक महान आशा बंधाती है।" उन्होंने १९१८ में क्रान्ति की सफलता का अभिनन्दन करते हुए लेनिन को एक संदेश भेजा। १९२१ में, सोवियत संघ के वैदेशिक विषय लोक-विभाग के एक संदेश का उत्तर देते हुए, उन्होंने अपनी यह इच्छा प्रकट की थी कि चीन को राज्य-सत्ता की स्थापना तथा अपनी सेनाओं और शिक्षा-व्यवस्था के संगठन में सोवियत संघ के अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए।

१९१९ में चीन में साम्राज्य-विरोधी और सामन्त-विरोधी 'चार मई आन्दोलन' आरम्भ हुआ। चीनी मज़दूर वर्ग ने तब पहली बार चीन की राजनीति में कदम रखा। १९२१ में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी स्थापित हुई और १९२२ में उसने यह अपील की कि देश के तमाम लोगों और क्रान्तिकारी वर्गों को साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध एक जनवादी संयुक्त मोर्चे में संगठित हो जाना चाहिए। उसने सुन यात-सेन और क्वोमिन्तांग की ओर भी मित्रता और सहायता का हाथ बढ़ाया। अगस्त १९२२ में, कैण्टन से दुबारा

शंघाई लौटने पर, सुन यात-सेन ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों से भेंट की। पार्टी के सुझावों ने उन्हें चीनी क्रान्ति की सफलता का वह नूतन पथ दिखलाया जिसे वह अब तक खोज रहे थे।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सहायता से सुन यात-सेन ने उन तीन सुप्रसिद्ध नीतियों का निरूपण किया जिन पर क्वोमिन्तांग का नया कार्यक्रम आधारित हुआ। ये तीन नीतियां थीं : सोवियत रूस से मित्रता, कम्युनिस्टों से सहयोग और किसानों व मज़दूरों की सहायता। कम्युनिस्टों के सुझाव पर, उन्होंने क्वोमिन्तांग को भी मज़दूरों, किसानों तथा निम्न-पूंजीपति और पूंजीपति वर्गों के संयुक्त मोर्चे के रूप में फिर से संगठित किया। उसके बाद जनवरी १९२४ में क्वोमिन्तांग की जो पहली राष्ट्रीय कांग्रेस हुई, उसमें कम्युनिस्टों ने भी भाग लिया। उस कांग्रेस का एक विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व था। सुन यात-सेन ने उसमें भाषण देते हुए चीन की जनवादी क्रान्ति के सच्चे और आवश्यक उद्देश्यों की बहुत ही स्पष्ट व्याख्या की। उन्होंने कहा, देश के अन्दर इसका कर्तव्य है जंगी सरदारों की सत्ता को समाप्त करना और उत्पीड़ित जनता को उनके चंगुल से पूर्णतया मुक्त कराना। देश के बाहर इसका कर्तव्य है साम्राज्यवादी आक्रमण का विरोध करना; साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीड़ित विश्व भर के लोगों के संग एकता कायम करना; और इस प्रकार सम्मिलित कार्यवाही और पारस्परिक सहायता द्वारा सभी देशों के उत्पीडित लोगों की मुक्ति में सहायता पहुंचाना।

तीन जनवादी सिद्धान्तों की फिर से व्याख्या

इन नीतियों के प्रकाश में, सुन यात-सेन ने प्रथम क्वोमिन्तांग राष्ट्रीय कांग्रेस के घोषणा-पत्र में अपने सान मिन चू यि (तीन जनवादी सिद्धान्तों) की एक नयी व्याख्या की।

उन्होंने बताया कि राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को दो अर्थों में ग्रहण करना चाहिए : साम्राज्यवाद के हाथों पिसती समूची चीनी जनता को स्वाधीन बनाना और चीन की सभी जातियों को बराबरी के अधिकार देना।

जनतंत्र के सिद्धान्त के सम्बन्ध में उनकी राय यह थी : "आधुनिक देशों की जनवादी व्यवस्था पर अक्सर पूंजीपति वर्ग का एकाधिकार होता है। वह उसे आम जनता का उत्पीड़न करने के लिए एक हथियार की तरह प्रयुक्त करता है। किन्तु क्वोमिन्तांग के जनतंत्र के सिद्धान्त के अनुसार, जनतंत्र में तमाम लोगों का हिस्सा होना चाहिए और कुछ लोगों को उसका अपने निजी स्वार्थों के लिए दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।" आगे चलकर उन्होंने कहा,

"उन सब व्यक्तियों और जन-समुदायों को जो ईमानदारी से साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं, सभी प्रकार की स्वतंत्रता और तमाम अधिकार दिये जाएंगे; और उन सब व्यक्तियों और जन-समुदायों को जो साम्राज्यवादियों और जंगी सरदारों के तलुवे चाटते हैं और देश के संग गद्दारी करते हैं, सभी प्रकार की स्वतंत्रता और तमाम अधिकारों से वंचित कर दिया जाएगा।"

'आजीविका' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए सुन यात-सेन ने कहा कि इसमें "किसानों को भूमि दो" नारे को क्रियान्वित करने की नीति शामिल है। इसके अतिरिक्त, मजदूरों के जीवन में सुधार होना चाहिए और व्यक्तिगत पूंजी पर नियंत्रण होना चाहिए, जिससे कि इजारेदार राष्ट्रीय अर्थतंत्र का अपने हितों के लिए दुरुपयोग न कर सकें।

सुन यात-सेन ने जिस तरह इन तीन नये जनवादी सिद्धान्तों का निरूपण किया, उससे पता चलता है कि उनके लम्बे क्रान्तिकारी जीवन के अनुभव ने उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुंचा दिया था कि चीन जैसे अर्ध-औपनिवेशिक, अर्ध-सामन्ती देश में उनका बुर्जुआ जनवादी गणतंत्र का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। अतः उन्होंने, दृढ़ता के साथ, उस स्वप्न को तिलांजलि दी और लोक गणतंत्र का कार्यक्रम स्वीकार किया। सुन यात-सेन एक महान देशभक्त थे, वह जनतंत्र के जंगजू और ईमानदार समर्थक थे—उनकी इस स्पिरिट को इस महान परिवर्तन में हम स्पष्ट देख सकते हैं।

अध्यक्ष माओ त्से-तुंग ने ठीक ही कहा है: "डा. सुन यात-सेन केवल इसलिए महान नही है कि उन्होंने १९११ की क्रान्ति का नेतृत्व किया था (यद्यपि वह पुराने समय की एक जनवादी क्रान्ति थी)। उनकी महानता इसलिए भी है कि उन्होंने रूस के संग मित्रता, कम्युनिस्टों के संग सहयोग और मज़दूरों व किसानों की सहायता करने की तीन बुनियादी क्रान्तिकारी नीतियों का प्रतिपादन कर, यह सिद्ध कर दिया था कि वह अपने आप को विश्व के रुझानों और जनता की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित कर सकते थे। उन्होंने तीन जनवादी सिद्धान्तों की एक नये दृष्टिकोण से व्याख्या की और इस तरह तीन बुनियादी नीतियों के संग तीन नये जनवादी सिद्धान्तों की स्थापना की।"*

क्रान्ति में नया विश्वास

फ़रवरी १९२३ में, जब सेना ने देशद्रोही चेन चियुंग-मिंग को क्वांग-

* **'ऑन न्यू डेमोक्रेसी' अंग्रेज़ी संस्करण, विदेशी भाषा प्रेस, पेकिंग १९५४, पृष्ठ ६९-७०।**

तुंग, क्वांगसी और युन्नान प्रान्तों से खदेड़ दिया, सुन यात-सेन कैण्टन वापस लौट आये। १९२३ और १९२४ के दो वर्ष उन्होंने भारी कठिनाइयों और उलझनों के बीच निरन्तर संघर्ष में गुज़ारे। एक बार साम्राज्यवादी देशों ने कैण्टन को जंगी जहाज़ों से घेर कर उन पर सशस्त्र आक्रमण करने की योजना बना ली। एक और अवसर पर उन्होंने सशस्त्र 'व्यापारी स्वयंसेवकों' द्वारा, जिन्हें विदेशियों के दलाल कैण्टन के व्यापारी वर्ग ने संगठित किया था, विद्रोह करवा दिया। एक और विद्रोह क्वांगसी प्रान्त के जंगी सरदारों की ओर से हुआ। इसी दौरान में, क्वोमिन्तांग के दक्षिणपंथी तत्व तीन नीतियों को असफल बनाने की हर संभव उपाय द्वारा कोशिश कर रहे थे। किन्तु सुन यात-सेन देश और विदेश की सारी प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध डट कर संघर्ष करते रहे। उन्होंने चीन के घरेलू मामलों में साम्राज्यवादियों के हस्तक्षेप की कड़ी आलोचना की; 'व्यापारी स्वयंसेवकों' और जंगी सरदारों के विद्रोहों को सशस्त्र सेना की सहायता से सफलतापूर्वक दबा दिया और क्वोमिन्तांग के दक्षिणपंथी तत्वों को निकाल बाहर किया। उन्होंने बड़ी गम्भीरता और आग्रह के साथ क्वोमिन्तांग के सदस्यों के सम्मुख यह घोषणा की कि "क्रान्ति को आगे ले जाने के लिए हमें रूस से शिक्षा लेनी होगी। जब तक हम रूस के उदाहरण पर नहीं चलेंगे, हमारे दल द्वारा प्रारम्भ की गयी यह क्रान्ति कभी सफल नहीं होगी।" और यह कि "हम कम्युनिज़म के अच्छे मित्र हैं।" सुन यात-सेन ने अनेक बार उनसे यह भी कहा, "पूर्ण क्रान्ति के हमारे कार्य में समझौता करना एक बहुत बड़ी गलती है. . . .अपनी क्रान्ति को सफल बनाने के लिए हमें बहुत धैर्य से काम करना होगा और सामूहिक प्रयत्न से आगे बढ़ना होगा।"

क्वोमिन्तांग और कम्युनिस्ट पार्टी में सहयोग स्थापित हो जाने के बाद, क्वांगतुंग शीघ्र ही सारे राष्ट्र का एक क्रान्तिकारी अड्डा बन गया और मज़दूर-किसान आन्दोलन तेज़ी से फैलने लगा। सुन यात-सेन ने जब जनता की हल-चलों को देखा तो क्रान्ति के भविष्य में उनका विश्वास और भी मजबूत हो गया।

अक्तूबर १९२४ में, उत्तरी चीन के जंगी सरदारों ने राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श के लिए, सुन यात-सेन को पेकिंग आमंत्रित किया। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया किन्तु साथ ही इस बात पर ज़ोर दिया कि चीन में एकता और शांति स्थापित करने के लिए एक राष्ट्रीय संसद बुलानी चाहिए; असमान संधियां, जो चीन के हितों के लिए घातक हैं,

रद्द की जानी चाहिएं और राष्ट्रीय स्वाधीनता और जनता की स्वतंत्रता स्थापित होनी चाहिए। १९२४ के अन्त में वह पेकिंग आये किन्तु शीघ्र ही बीमार पड़ गये। डाक्टरी परीक्षण से पता चला कि उनके जिगर में कैन्सर हो गया था। १२ मार्च १९२५ को उनका जीवन भर संघर्ष करने वाला दिल अचानक शांत हो गया।

डा. सुन की वसीयत

मृत्यु-शय्या पर की गयी अपनी वसीयत में सुन यात-सेन अपने चालीस वर्ष के क्रान्तिकारी अनुभव का निचोड़ छोड़ गये हैं। वसीयत में कहा गया है: "क्रान्ति का उद्देश्य अर्थात् चीन के लिए स्वाधीनता और बराबरी का दर्जा प्राप्त करने के लिए, हमें अपने देश की जनता में पूर्ण जागृति पैदा करनी चाहिए और संसार के उन सब लोगों के साथ जो हमसे बराबरी का व्यवहार करते हैं, सहयोग स्थापित कर एक साझा संघर्ष चलाना चाहिए।" उन्होंने सोवियत संघ के नाम अपना स्नेहपूर्ण अन्तिम पत्र लिखते हुए कहा था, "प्यारे साथियो, तुम से बिदा लेते हुए मै अपनी यह दृढ़ आशा प्रकट करना चाहता हूं कि वह प्रभात दूर नहीं है जब सोवियत संघ चीन का एक स्वतंत्र और शक्तिशाली मित्र व सहयोगी के रूप में स्वागत करेगा। मुझे पूरी आशा है कि दुनिया भर के उत्पीड़ित लोगों की मुक्ति के महान संघर्ष में दोनों देश कंधे से कंधा मिलाकर विजय की ओर आगे बढ़ेंगे।"

सारे देश में, जनता ने इस महान क्रान्तिकारी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया। उनकी स्मृति में पेकिंग तथा चीन के बहुत से अन्य स्थानों में विराट सभाएं और प्रदर्शन हुए।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने संवेदना के अपने संदेश में क्वोमिन्तांग से अपील की कि उसे "सुन यात-सेन के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के आधार पर" अंदरूनी एकता कायम रखनी चाहिए। कम्युनिस्ट पार्टी ने जनता से यह अपील की कि सुन यात-सेन की स्मृति में उसे साम्राज्यवादियों और जंगी सरदारों के विरुद्ध मज़बूत कदम उठाने चाहिएं। स्तालिन ने रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति की ओर से सहानुभूति का यह संदेश भेजा: "रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति को पूरा विश्वास है कि सुन यात-सेन का महान आदर्श उनकी मृत्यु के संग समाप्त नही हो जाएगा। सुन यात-सेन का आदश चीन के मज़दूरों और किसानों के दिलों में जीवित रहेगा और चीनी जनता के शत्रुओं को आतंकित करता रहेगा।"

क्रान्ति की विजय

सुन यात-सेन का देहान्त हुए अभी कुछ लम्बा अरसा नहीं गुज़रा था कि शंघाई में एक विराट हड़ताल-आन्दोलन आरम्भ हो गया। साम्राज्यवादियों ने जिस क्रूर ढंग से उस पर हमला किया, उससे समूचे राष्ट्र में क्रान्ति की एक महान ज्वाला धधक उठी। अगले वर्ष, जुलाई १९२६ में, क्रान्तिकारी शक्तियों ने मिल कर कैण्टन में उत्तरी चीन के जंगी सरदारों के विरुद्ध उत्तरी अभियान शुरू कर दिया और उन्हें एक के बाद दूसरी महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त होती गयी। किन्तु, ठीक उस अवसर पर जब उत्तरी अभियान पूर्ण सफलता प्राप्त करने वाला था, क्रान्ति-विरोधी च्यांग काइ-शेक, जो जनता का हितैषी होने का दम भरता था, साम्राज्यवादियों से मिल गया। उसने मज़दूरों, किसानों और जनवादी बुद्धिजीवियों के खून से अपने हाथ रंगे और चीनी क्रान्ति और सुन यात-सेन दोनों के संग गद्दारी की।

१९२७ से १९४९ तक, बाईस वर्ष, च्यांग काइ-शेक की प्रतिक्रियावादी सरकार, जिसने चीन की केन्द्रीय सत्ता हथिया ली थी, जनता, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत संघ के विरुद्ध लगातार शत्रुतापूर्ण नीति बरतती रही। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने च्यांग काइ-शेक के शासन का तख़्ता पलटने में चीन की जनता का नेतृत्व किया और अनेक वर्षों के कठिन संघर्ष के बाद क्रान्ति की विजय हुई। उसी विजय के आधार पर आज हमारी जनता चीन को, अटूट विश्वास के साथ, एक महान समाजवादी राज्य में परिवर्तित कर रही है।

वह 'प्रभात' जिसकी सुन यात-सेन ने मृत्यु के समय इतनी उत्सुकता से कल्पना की थी, आज आ पहुंचा है। उनकी आशा के अनुसार, आज चीनी जनता सचमुच अपने सच्चे मित्र और सहयोगी सोवियत संघ के साथ कंधे से कंधा मिला कर आगे बढ़ रही है। सुन यात-सेन ने अपनी वसीयत में जो आशा प्रकट की थी, वह केवल पूरी ही नहीं हो गयी है, बल्कि राष्ट्र उससे भी कहीं आगे बढ़ चुका है और नये कर्तव्य पूरे कर रहा है। किन्तु क्रान्ति के इस महान अग्रदूत की अपूर्व देन तथा 'निरन्तर प्रगति और अटल धैर्य' की उनकी महान स्पिरिट चीनी जनता के हृदय में सदा अमर रहेगी।

('पीपुल्स चायना' अंक ७, १९५५)

चार मई आन्दोलन

लि गु

१९१९ का चार मई आन्दोलन चीनी जनता के मुक्ति-संघर्ष के इतिहास में एक विशिष्ट महत्व रखता है। यह साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध एक ऐसा जन-आन्दोलन था जिसने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना और चीनी सर्वहारा-क्रान्ति के द्रुत विकास के लिए ज़मीन तैयार की। इस आन्दोलन से चीन के इतिहास में एक नया दौर आरम्भ हुआ जिसमें साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के खिलाफ़ सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में जनवादी क्रान्ति का जन्म हुआ।

पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में चीन पर विदेशी पूंजीवाद हावी होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप चीन की अर्थ-व्यवस्था और उसका सामाजिक ढांचा, दोनों धीरे-धीरे अर्ध-सामन्ती और अर्ध-औपनिवेशिक रूप धारण करने लगे। यद्यपि १९११ की बुर्जुआ-परिचालित क्रान्ति ने मांचू वंश का तख़्ता उलट दिया, परन्तु वह सामन्तवाद को निर्मूल नहीं कर सकी और सही अर्थों में राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने में असफल रही। उसके बाद सारा देश छोटे-छोटे सामन्ती राज्यों में विभाजित हो गया जिन पर जंगी सरदारों के विविध गुट हुकूमत करते थे। उन सबको किसी न किसी विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति से सहायता मिलती थी। वे आपस में हमेशा ही लड़ते-झगड़ते रहते थे। चीन की जनता को इन विनाशकारी गृहयुद्धों से बहुत कष्ट उठाने पड़े।

१९१४ से लेकर १९१८ तक, पश्चिम के साम्राज्यवादी देश प्रथम विश्व युद्ध में उलझे रहे। पूर्व में किसी प्रकार की सरगर्मी करने के लिए उनके पास समय नहीं था। इस थोड़े अवकाश-काल में चीन के छोटे उद्योगों की काफ़ी प्रगति हुई। १९१३ में कपड़े के कारखानों में जितनी पूंजी लगायी गयी थी, उससे केवल ४,६०० करघे और ६,५२,६०० तकुए चलते थे। १९१९ में करघों की संख्या ९,४०० और तकुओं की संख्या ११,७४,००० हो गयी।

किन्तु पश्चिमी पूंजीपतियों की ओर से प्रतियोगिता का ख़तरा समाप्त

होते ही जापानी साम्राज्यवाद ने अपना सिर उठाया और जापानी पूंजी और माल धड़ाधड़ चीन की मंडी में निर्यात किया जाने लगा। जापानी पूंजीपतियों के हाथ में जो तकुए थे उनकी संख्या लड़ाई के दौरान में तीन-गुना बढ़ गयी।

चीन में औद्योगिक विकास होने से मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई और मजदूर वर्ग शक्तिशाली होने लगा। साम्राज्यवाद, सामन्तवाद और देशी पूजीवाद द्वारा शोषित चीन का सर्वहारा वर्ग अधिकाधिक क्रान्तिकारी होता गया।

चीन की प्रगतिशील शक्तियों में मजदूर वर्ग, किसान, छोटे पूंजीपति और राष्ट्रीय पूजीपति शामिल थे। दूसरी ओर, ज़मींदार और साम्राज्यवादियों के दलाल बड़े पूजीपति चीन की प्रतिगामी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे। दोनों के बढ़ते हुए विरोध से नये और पुराने विचारों का संघर्ष भी गहरा होता गया। ऐसी परिस्थिति में जनता की राजनीतिक चेतना का स्तर भी ऊंचा उठता गया।

इस संघर्ष को उस 'नव संस्कृति आन्दोलन' में देखा जा सकता था जो १९१६ से प्रगतिशील तत्वों द्वारा बुद्धिजीवियों में चलाया जा रहा था। इस आन्दोलन का उद्देश्य सामन्तवाद का विरोध करना तथा जनतंत्र, विज्ञान और साहित्य के सुधार को प्रोत्साहन देना था। यह आन्दोलन जनता में बहुत ही लोक-प्रिय हुआ और देश के कोने-कोने में जनता की स्वतंत्रता की मांग ज़ोर पकड़ने लगी।

रूस की महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने चीन की जनता पर एक गहरा और अमिट प्रभाव डाला। साम्राज्यवाद के दौर में सर्वहारा क्रान्ति को सफल बनाने के जो तरीके लेनिन ने सुझाये थे, वे उनके लिए और भी स्पष्ट हो गये। रूसी क्रान्ति ने औपनिवेशिक और पराधीन देशों की जनता के राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्षो के लिए एक सही मार्ग निर्देशित किया और चीनी जनता के लिए सफल क्रान्ति का एक सजीव उदाहरण पेश किया।

'नव संस्कृति आन्दोलन' को आरम्भ करने वाले प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और उसका समर्थन करने वाले नौजवानों ने अक्तूबर क्रान्ति में राष्ट्रीय मुक्ति की नयी किरण देखी। समूचे बुद्धिजीवी वर्ग ने अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति के साथ अपनी सहानुभूति प्रगट की। उनके लिए रूसी जनता की सफलता इस बात का प्रमाण थी कि जनता के मुक्ति-संघर्ष की शक्ति महान है।

चार मई

पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों को प्रथम विश्व युद्ध में उलझा देख कर जापानी साम्राज्यवादियों ने उस परिस्थिति का पूरा लाभ उठाया। चीन पर

आर्थिक दबाव डालने के अलावा, उन्होंने उसके विरुद्ध राजनीतिक और सैनिक आक्रमणकारी कार्यवाहियां भी शुरू कर दीं। उन्होंने शान्तुग प्रान्त की बन्दरगाह त्सिंगताओ पर, जिसे एक रियायत के तौर पर जर्मनी को दे दिया गया था, बलपूर्वक अपना अधिकार कर लिया। इसी तरह उन्होंने त्सिंगताओ-त्सीनान रेलवे और उसके आस-पास के इलाके को भी अपने अधिकार में ले लिया। किन्तु वे इतने मे संतुष्ट होने वाले नहीं थे। अपनी आक्रमणकारी कार्यवाहियों को और अधिक फैलाने के लिए उन्होंने पेकिंग की चीन सरकार के सामने कुछ मांगें पेश कीं जो '२१ मांगों'* के नाम से कुख्यात हैं। उस समय जंगी सरदार युआन शिह-काइ चीन सरकार के प्रधान थे। बाद में उन्होंने पेकिंग सरकार के प्रधान तुआन चि-जुइ को अनेक देशहित-विरोधी समझौते सम्पन्न करने के लिए विवश किया और उन्हें जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करने के लिए उकसाया।†

जर्मनी की पराजय के बाद जनवरी १९१९ में पैरिस में शांति सम्मेलन बुलाया गया। चीन के राष्ट्रीय पूंजीपति, जिन्होंने विश्व युद्ध के दौरान में चीन में होने वाली जापान की आक्रमणकारी कार्यवाहियों का विरोध किया था, अंग्रेज़ और अमरीकी साम्राज्यवादियों की 'सत्य' और 'न्याय' की खोखली

*** १९१५ में जापान द्वारा २१ मांगें पेश की गयी थीं। उनको क्रियान्वित करने से चीन जापान का एक उपनिवेश बन जाता था। किन्तु उस समय की पेकिंग सरकार के प्रधान युआन शिह-काइ जापानियों की सहायता बिना सम्राट नहीं बन सकते थे। इसलिए ९ मई १९१५ को उन्होंने इन मांगों की स्वीकृति की घोषणा कर दी। चीनी जनता ने ग़द्दारी के इस लज्जास्पद कार्य का तीव्र विरोध किया।**

† युद्ध के अन्तिम दौर में ब्रिटेन, फ्रांस और जारशाही रूस ने जापान से एक गुप्त समझौता किया था जिसके अनुसार यह तय हुआ था कि शांति सम्मेलन में उपरोक्त पश्चिमी राष्ट्र जापान की इस मांग का समर्थन करेंगे कि उसे शान्तुंग प्रांत में तथा भू-मध्य रेखा के उत्तर में प्रशांत सागर के उन द्वीपों पर जो अब तक जर्मनी के अधिकार में थे, वे सब विशेषाधिकार मिलने चाहिएं जो पहले जर्मनी को प्राप्त थे। इसके बदले में जापान का यह कर्तव्य होगा कि वह चीन को जर्मनी के खिलाफ़ लड़ाई में घसीटे। यही कारण था कि जापान ने तुआन चि-जुइ की सरकार को मजबूर किया कि वह पश्चिमी राष्ट्रों के संग मिलकर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करे।

बातों में आ गये थे। उनका यह विश्वास कि सम्मेलन के फ़ैसलों से चीन का सम्मान दूसरे देशों में बढ़ेगा, बाद में निराधार साबित हुआ। लोकमत के दबाव में आ कर पेकिंग सरकार ने सम्मेलन में भाग लेने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल भेजा जिसने सम्मेलन के सामने कई मागें रखी जैसे कि चीन में स्थित विदेशी सेनाओं को हटाया जाए; चीन की भूमि पर विदेशियों को जो विशेषाधिकार प्राप्त हैं उन्हें समाप्त किया जाए; जो प्रदेश और सुविधाएं 'लीज़' के रूप में विदेशियों को दी गयी है, वे चीन को वापस लौटायी जाएं; आयात-निर्यात कर लगाने की स्वतंत्रता दी जाए; और जापान की '२१ मांगों' को, जिन्हें युआन शिह-काइ ने स्वीकार किया था, रद्द किया जाए।

किन्तु पैरिस सम्मेलन ने चीन की इन न्यायोचित मांगों को ठुकरा दिया। सम्मेलन ने त्सिंगताओ पर अधिकार जमा लेने और शान्तुंग प्रान्त में उन सब सुविधाओं और विशेषाधिकारों को, जो पहले जर्मनी को प्राप्त थे, खुद हथिया लेने की जापान की कार्यवाहियों पर अपनी मोहर लगा दी और इस प्रकार परि-स्थिति को और भी जटिल बना दिया। चीन के बुद्धिजीवियों को सम्मेलन के इस दुर्व्यवहार से गहरा धक्का लगा। उन्होंने उन निन्दनीय फ़ैसलों की कड़ी आलोचना की और उनका विरोध करने का निश्चय किया। क्रान्तिकारी भावना से प्रेरित हो, उन्होंने विद्यार्थियों के साथ मिल कर शांति-सम्मेलन के उन फ़ैसलों के विरुद्ध संघर्ष आरम्भ कर दिया। उन्होंने देश की जनता से अपील की कि उसे त्साओ जु-लिन, चांग त्सुंग-श्यांग और लु त्सुंग-यु जैसे देशद्रोहियों और सामन्तवादी जंगखोर सरकार के ऊंचे अधिकारियों और भ्रष्ट टुकड-खोरों का विरोध करना चाहिए। ये वही लोग थे जिन्होंने जापान के संग देशद्रोह के समझौते किये थे और विदेशी साम्राज्यवादियों से कर्जो के रूप में आर्थिक सहायता स्वीकार की थी।

चार मई १९१९ को पेकिंग की विविध शिक्षा-संस्थाओं के ५,००० से अधिक छात्रों ने देशद्रोहियों के विरुद्ध संघर्ष का झंडा उठाया। जंगखोर सामन्ती सरकार की धमकियों की उपेक्षा कर वे त्येन आन मेन के सामने प्रदर्शन के लिए इकट्ठे हो गये। वे नारे लगाते हुए जापानी साम्राज्यवाद के टुकड़-खोर, त्साओ जु-लिन के घर की ओर बढ़ने लगे। सशस्त्र पहरेदारों को खदेड़ कर वे उसके मकान में घुस गये। त्साओ पीछे की दीवार को लांघ कर भाग निकला। उसकी तलाश करते-करते छात्रों ने दूसरे देशद्रोही चांग त्सुंग-श्यांग को पकड़ लिया। वह जापान में चीन का मंत्री था और उस समय त्साओ से मिलने के लिए उसके घर आया हुआ था। छात्रों ने गुस्से में

आ कर उसे खूब पीटा। तब तक पुलिस घटना-स्थल पर पहुंच गयी और उसने बत्तीस विद्यार्थियों को गिरफ्तार कर लिया।

सारे देश में विद्यार्थियों के प्रति भाईचारे की भावना उमड़ पड़ी। पेकिंग के विद्यार्थियों के इस देशभक्तिपूर्ण संघर्ष के समर्थन में ७ मई को विद्यार्थियों ने टेंटशिन, शंघाई, नानकिंग, वुहान, त्सीनान, तैयुआन, आनकिंग, चांगशा, कैण्टन, फूचो और चुंगकिंग में सभाएं और प्रदर्शन आयोजित किये।

१९ मई को पेकिंग के विविध स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों ने सरकार की दमनपूर्ण कार्यवाहियों के खिलाफ़ विरोध प्रदर्शित करने के लिए हड़ताल की। उन्होंने सार्वजनिक स्थानों और बाज़ारों में इकट्ठे होकर जापानी साम्राज्यवाद और उसके इशारे पर चलने वाले लोगों की तीव्र भर्त्सना की। ३ जून को पेकिंग की जंगख़ोर सामन्ती सरकार ने, जिसकी पेकिंग-स्थित जापानी मंत्री के संग गहरी छनती थी, पेकिंग के १००० विद्यार्थियों को गिरफ़्तार कर लिया। उन्होंने यह कदम उनके देशभक्ति के आन्दोलन को कुचलने के लिए उठाया। किन्तु सरकार के इस नये अत्याचार ने विद्यार्थियों के संघर्ष की ज्वाला को और भड़का दिया। पुलिस के हस्तक्षेप की परवा न करते हुए विद्यार्थियों ने इस आन्दोलन को आम जनता तक फैलाया। इस तरह आन्दोलन को नयी शक्ति प्राप्त हुई और वह देश की समूची जनता की चेतना को जागृत करने लगा।

आन्दोलन की प्रगति

इसके बाद विद्यार्थी आन्दोलन का केन्द्र पेकिंग से हटकर शंघाई पहुंच गया। उसकी सीमाएं विकसित होती गयीं, यहां तक कि मजदूर वर्ग भी उसमें भाग लेने लगा। शंघाई उस समय चीन के उद्योग और व्यापार का सब से बड़ा केन्द्र था। वहां पर विदेशी पूंजीपतियों और चीनी राष्ट्रीय पूंजीपतियों द्वारा संचालित औद्योगिक और व्यापारिक व्यवसाय केन्द्रित थे। चीनी सर्वहारा वर्ग का मुख्य गढ़ भी वहीं था।

जब चीनी छात्रों ने जापानी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन चलाया तो मंडियों में चीनी माल की खपत अधिक मात्रा में होने लगी। चीन के राष्ट्रीय पूंजीपतियों को क्योंकि इससे ठोस फ़ायदा हो रहा था इसलिए, तथा देश-प्रेम की भावना से उत्प्रेरित हो उन्होंने भी विद्यार्थी-आन्दोलन का समर्थन आरम्भ कर दिया। विद्यार्थियों से प्रभावित हो शंघाई के व्यापारियों ने ५ जून को हड़ताल की घोषणा की जिसका अन्य बड़े शहरों के व्यापारियों ने भी अनुकरण

किया। सब ओर से यह मांग की जाने लगी कि गिरफ़्तार विद्यार्थियों को रिहा किया जाए और देशद्रोहियों को सज़ा दी जाए।

शंघाई के मजदूर साम्राज्य-विरोधी संघर्ष में अधिक सक्रिय भाग लेने लगे। पांच जापानी कपडा मिलों और चीनी कमर्शियल प्रेस के २०,००० से अधिक मज़दूरों और कर्मचारियों ने ५ जून की हड़ताल में भाग लेने में पहल-कदमी की। अगले दिन पब्लिक ट्रांसपोर्ट के कर्मचारियों और एक ब्रिटिश इंजीनियरिंग कारखाने के मज़दूरों ने उनका अनुकरण किया। फिर तो समुद्री जहाज़ों के कारखानों के मज़दूर, समुद्री मछेरे, मल्लाह तथा मोटर वर्कशॉपों, सार्वजनिक सेवाओं और रेलवे के मज़दूर—सभी हड़ताल संगठित करने लगे।

इन हड़तालों का ऐसा दबाव पड़ा कि पेकिंग की जंगखोर सामन्ती सरकार को मजबूर हो सभी गिरफ़्तार विद्यार्थियों को रिहा करना पड़ा।

परन्तु जन-आन्दोलन के इस तेजी से बढ़ते हुए विकास से अब शंघाई के राष्ट्रीय पूंजीपति कुछ घबराहट महसूस करने लगे थे। उन्होंने छात्रों से कहा कि वे मज़दूरों को यह सलाह दें कि और ज़्यादा हड़तालों का परिणाम अच्छा नहीं होगा। उसी समय शंघाई में स्थित साम्राज्यवादी अधिकारियों ने दमन की नीति अपनानी आरम्भ कर दी। किन्तु वे अपनी इन कार्यवाहियों से मज़दूरों को डराने में असफल रहे। ९–१० जून तक हड़तालियों की संख्या लगभग ७०,००० हो गयी। सब औद्योगिक और व्यापारिक कार्य और यातायात के साधन ठप्प हो गये। शंघाई का समूचा शहर एक प्रकार से पंगु हो गया। हड़तालों की लहर शीघ्र ही दूसरे स्थानों में भी फैल गयी। उत्तरी चीन में तांगशान और चांगसिनत्येन के रेलवे-मज़दूरों और यांगत्ज़ी के बीच की बन्दरगाह कियुकियांग के मज़दूरों ने हड़ताल और देशभक्ति के प्रदर्शन किये। टेंटशिन-पुको रेलवे के मज़दूर भी हड़ताल की तैयारियां करने लगे।

विद्यार्थियों की हड़तालों की यह लहर उस समय तक उत्तर में हेलुंगक्यांग से दक्षिण में क्वांगतुंग तक और पूर्व में क्यांगसु से दक्षिण-पश्चिम में युन्नान तक, ६० से भी अधिक शहरों में फैल चुकी थी। पेकिंग में अत्यन्त प्रगतिशील तत्वों की ओर से जनता में पर्चे बांटे गये जिनमें मांग की गयी थी कि जापान के संग किये गये देशहित-विरोधी समझौते रद्द किये जाएं, देशद्रोहियों को पदच्युत किया जाए और जनता के भाषण, प्रकाशन और सभा की आज़ादी के अधिकार को स्वीकार किया जाए। इन पर्चों में सरकार को चेतावनी दी गयी थी कि यदि वह जनता की ये मांगें स्वीकार नहीं करेगी तो पेकिंग के निवासी क्रान्तिकारी सुधारों के लिए संघर्ष आरम्भ कर देंगे।

पेकिंग सरकार देश भर में फैलती मजदूरों, व्यापारियों और विद्यार्थियों की इन हड़तालों से अत्यन्त चिन्तित हो उठी। वह उन क्रान्तिकारी विचारों से, जो इन पर्चों की भाषा में छलके पड़ते थे, भयभीत हो गयी।

लोकमत के बढ़ते हुए दबाव से मजबूर हो पेकिंग सरकार ने १० जून को घोषणा की कि उन तीन व्यक्तियों ने जो जनता में देशद्रोहियों के रूप में सब से अधिक बदनाम थे, त्यागपत्र दे दिया है। उनके नाम थे: त्साओ जु-लिन, चांग त्सुंग-श्यांग और लु त्सुंग-यु। उसने मंत्रीमंडल में उलट-फेर करने की भी घोषणा की।

लोगों ने यह सोच कर कि सरकार ने जनता की मांगें स्वीकार कर ली हैं और आन्दोलन सफल हो गया है, १२ जून को अपनी हड़तालें समाप्त कर दीं।

व्यापक परिणाम

चार मई आन्दोलन के बहुत ही गहरे और व्यापक परिणाम निकले। आन्दोलन के दौरान में और उसके फलस्वरूप अग्रगामी क्रान्तिकारी तत्वों को, जिन्हें कम्युनिज़्म का अभी केवल प्रारम्भिक ज्ञान था, यह बात स्पष्ट हो गयी कि पीड़ित जनता के संगठित संघर्ष द्वारा ही लोक क्रान्ति सफल हो सकती है। उनमें लि ता-चाओ,* माओ त्ज़े-तुंग और चु च्यु-पाई† भी थे। 'श्यांग च्यांग रिव्यू' के एक लेख में कामरेड माओ त्ज़े तुंग ने, जो उस पत्र के सम्पादक थे और जिन्होंने स्वयं व्यक्तिगत रूप से चार मई आन्दोलन के दौरान में हुनान प्रान्त में देशद्रोहियों के विरुद्ध जनता के शक्तिशाली संघर्ष का नेतृत्व किया था, लिखा था: "अब हम जानते हैं कि लु जुंग-तिंग$ की बन्दूकों से त्साओ जु-लिन जैसे देशद्रोही

*** लि ता-चाओ उन व्यक्तियों में से थे जिन्होंने चीनी जनता को सब से पहले मार्क्सवाद-लेनिनवाद का परिचय दिया। वह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सब से पुराने नेताओं में से थे जिन्होंने चीन में पार्टी की नींव डाली। जंगी सरदार चांग त्सो-लिन ने उन्हें १९२७ में गिरफ़्तार कर लिया और बाद में फांसी पर चढ़ा दिया।**

† चु च्यु-पाइ चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सब से शुरू के नेताओं और सदस्यों में से थे। १९३५ में क्वोमिन्तांग ने फ़ुक्येन प्रान्त के एक गुरिल्ला क्षेत्र में उन्हें पकड़ लिया और उसी वर्ष १८ जुलाई को फांसी पर चढ़ा दिया।

$ दक्षिणी चीन का एक बड़ा जंगी सरदार जिसने एक समय पेकिंग सरकार का विरोध करने के लिए सुन यात-सेन के संग मिल कर काम किया था।

नहीं हटाये जा सकते। जनता के संगठित विरोध द्वारा ही देशद्रोहियों को नीचा दिखाया जा सकता है––जनता के सामने ही वे भय से कांपने लगेंगे और आतंकित हो कर भाग खड़े होंगे।" उन्होंने बताया कि यूरोप की उत्पीड़ित जनता ने भी संघर्ष का यही रास्ता अपनाया है। उन्होंने लिखा, "हमें भी वैसा ही करना चाहिए और राष्ट्रव्यापी पैमाने पर अपने को संगठित करना चाहिए।"

चार मई आन्दोलन के कुछ अरसे बाद ही पेकिंग और शंघाई में मार्क्सवादी दलों की स्थापना हो गयी। १९२१ में इन दलों को एक सर्वहारा पार्टी––चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में संगठित कर दिया गया जो तब से बराबर चीनी जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष का नेतृत्व कर रही है।

शीघ्र ही चीनी जनता का क्रान्तिकारी आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बद्ध होने लगा और उस विराट विश्व-आन्दोलन का एक अभिन्न अंग बन गया।

('पीपुल्स चायना' अंक ९, १९५४)

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म

हु ह्वा*

तीस वर्ष पूर्व, पहली जुलाई १९२१ को, चीन के सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व करने वाली चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। उस समय तक चीन की जनता को, जो १८४० के अफीम-युद्ध के बाद से साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध संघर्ष कर रही थी, कोई सही क्रान्तिकारी पथ उपलब्ध नहीं हो पाया था। किन्तु चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में चीन की जनता विजय की ओर अग्रसर होने लगी। १९४९ में, चीनी लोक गणतंत्र की स्थापना हो जाने पर, चीन में क्रान्तिकारी संघर्ष का प्रथम चरण पूर्ण हुआ। यह घटना इस बात की द्योतक थी कि चीन में नयी जनवादी क्रान्ति सफलतापूर्वक पूर्ण हो गयी है।

आज चीन की कम्युनिस्ट पार्टी देश का समाजवादी उद्योगीकरण और परिवर्तन करने के लिए चीन की जनता का नेतृत्व कर रही है। प्रति दिन नवीन और पहले से कहीं बढ़-चढ़ कर सफलताएं प्राप्त हो रही है। इसलिए, चीन के आधुनिक इतिहास में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना एक बड़े महत्व की घटना है।

चीन के सर्वहारा वर्ग का विकास

१९१४–१९१८ के विश्व युद्ध के दौरान में चीन में देशी पूंजीवाद का तेजी से विकास हुआ। साम्राज्यवादी शक्तियां यूरोप के युद्ध में संलग्न थीं, जिसके परिणामस्वरूप चीन पर उनका शिकंजा कुछ समय के लिए ढीला पड़ गया। चीन की औद्योगिक प्रगति के संग सर्वहारा वर्ग की वृद्धि भी तेजी से होने लगी। १९१३ में चीन के उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों की संख्या ६,५०,००० थी, १९१९ में उनकी संख्या प्रायः २० लाख तक पहुंच गयी। चीन के अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध-सामन्ती समाज में सर्वहारा वर्ग की एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में गणना होने लगी।

*** इतिहासवेत्ता हु ह्वा 'चीन की नयी जनवादी क्रान्ति का इतिहास' ग्रंथ के लेखक हैं।**

चीन के समाज में उद्योगों में काम करने वाला यह सर्वहारा वर्ग सब से बुरी तरह उत्पीड़ित था। आर्थिक रूप से निम्नतम स्तर पर होने के कारण, उसे साम्राज्य-वाद, देशी पूंजीवाद और सामन्तवाद——तीनों के सामूहिक शोषण का शिकार होना पड़ता था। यह सर्वहारा वर्ग उत्तरोत्तर एक ठोस क्रान्तिकारी रूप धारण करने लगा। अनुपात में कुल जनसंख्या का अल्प भाग होने के बावजूद, वह कुछ स्थानों पर बहुत ही केन्द्रित था। मज़दूरों की अधिक संख्या ऐसे उद्योगों में पायी जाती थी जहां ५०० से अधिक मज़दूर काम किया करते थे। चीन के शहरी इलाकों में औद्योगिक मज़दूरों के अतिरिक्त दुकान-कर्मचारियों तथा छोटे उद्योगों और दस्तकारियों में लगे वेतन-मजदूरों की संख्या लगभग एक करोड़ बीस लाख थी। गांवों के सर्वहारा वर्ग—खेतिहर मजदूरों की संख्या इससे भी कहीं अधिक थी। इस तरह शहरों और गांवों में सर्वहारा वर्ग एवं अर्ध-सर्वहारा की संख्या, गरीब किसानों सहित, देश की कुल जनसंख्या की आधी से भी अधिक थी। अत्यधिक निर्धनता की जर्जरित अवस्था में जीवन यापन करते हुए, ये वर्ग अमानुषिक शोषण और उत्पीड़न के शिकार बने हुए थे। चीन के औद्योगिक मज़दूरों की बड़ी संख्या उन किसानों की थी जो गरीबी के बोझ से दब कर दिवालिये हो चुके थे। इसलिए, जैसा कि स्वाभाविक था, मज़दूरों और किसानों के बीच सहयोग और मेल-जोल की भावना सुदृढ़ होने लगी।

अफ़ीम-युद्ध के बाद चीन की जनता साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष करती रही। किन्तु ये क्रान्तिकारी संघर्ष, जिनमें ताईपिंग की महान किसान-क्रान्ति और १९११ की पूंजीवादी क्रान्ति भी शामिल है, असफल रहे। इससे यह सिद्ध होता है कि चीन के किसान और देशी पूंजीपतियों का कमज़ोर और पिछड़ा वर्ग, जो साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के जुए के नीचे पिस रहे थे, इतने शक्तिशाली नहीं थे कि जनवादी क्रान्ति को सफल बनाने में समर्थ हो सकते। दूसरी ओर, चीन का औद्योगिक सर्वहारा वर्ग, दूसरे देशों के सर्वहारा वर्ग की भांति, आर्थिक संगठन की सब से अधिक विकसित प्रणाली से सम्बद्ध था।

इसलिए, ऐतिहासिक रूप से यह सब से अधिक प्रगतिशील वर्ग बन गया और चीनी समाज में उत्पादन की नयी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने लगा। ऐसी परिस्थिति में चीनी समाज में जो परिवर्तन हुए, उनके कारण यह अनिवार्य हो गया कि चीन के अर्ध-औपनिवेशिक और अर्ध-सामन्ती उत्पादन-सम्बन्धों को मिटा कर उनके स्थान पर नये जनवादी और अन्ततः समाजवादी तथा साम्यवादी (कम्युनिस्ट) सम्बन्ध स्थापित किये जाएं। ज़ाहिर है, ऐसी व्यवस्था चीनी समाज में विकसित होती नयी उत्पादन-शक्तियों के अनुरूप

होगी। चीन का भविष्य आज उसके औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के हाथों में सुरक्षित है। ऐतिहासिक आवश्यकता का भी यही तकाज़ा था कि यही वर्ग चीन की क्रान्ति का नेतृत्व करता।

चीन के औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की शक्ति में वृद्धि होने से उसकी कार्यवाहियों की संख्या भी तेज़ी से बढ़ने लगी। मज़दूरों की हड़तालें इसी बढ़ती हुई शक्ति की परिचायक थीं। अपूर्ण आंकड़ों के अनुसार १९१८ मे चीन के औद्योगिक शहरों मे लगभग २५ हड़तालें हुई। ये आर्थिक हड़तालें मजदूरों ने अपने-आप कीं, क्योंकि उन अमानुषिक अत्याचारों और नारकीय परिस्थितियों को सहना जिनके कारण उनकी अवस्था पशुओं से भी बदतर हो गयी थी, अब असंभव हो चला था।

चार मई आन्दोलन

१९१९ में साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध चार मई आन्दोलन आरभ हुआ। चीन की राजनीति में इसी समय औद्योगिक सर्वहारा एक शक्तिशाली और जंगजू वर्ग की हैसियत से सामने आया। शंघाई तथा अन्य शहरों के मज़दूरों ने बहुत सी राजनीतिक हड़तालें संगठित कीं तथा आन्दोलनों को फैलाने और सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

प्रथम विश्व युद्ध के अनन्तर चीन में देशी पूजीवाद के विकास का महत्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि जनता में सामन्तवाद के बन्धनों से मुक्ति पाने की इच्छा प्रबल होने लगी। उसी समय देश के प्रगतिशील बुद्धिजीवियों द्वारा भी सुधार और उन्नति की मांग की जाने लगी। देश का 'नव संस्कृति आन्दोलन' इन मांगों पर आधारित हो उत्तरोत्तर प्रगति करने लगा। यह आन्दोलन सामन्तवाद के विरुद्ध था और विज्ञान तथा जनतंत्र की प्रगति में सहयोग देता था। यह चीनी जनता की नव चेतना का जीवित प्रतीक बन गया।

चार मई आन्दोलन से एक वर्ष पूर्व चीनी जनता विश्वव्यापी क्रान्तिकारी आन्दोलन और रूस की अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति से अत्यधिक प्रभावित हुई थी। इसी समय उसने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्तों से भी परिचय प्राप्त किया। चीन में मार्क्सवाद-लेनिनवाद का पहले-पहल प्रचार करने वालों में लि ताचाओ, माओ त्ज़े-तुग आदि के नाम उल्लेखनीय है। 'नव संस्कृति आन्दोलन' का यह क्रान्तिकारी रूप उस संयुक्त मोर्चे द्वारा विकसित हुआ जिसमें कम्युनिज़म का प्राथमिक ज्ञान रखने वाले बुद्धिजीवी, क्रान्तिकारी निम्न-बुर्जुआ बुद्धिजीवी और बुर्जुआ बुद्धिजीवी (जो आन्दोलन के दक्षिणपक्षी कहे जा सकते थे) शामिल थे। यह आन्दोलन मार्क्सवाद-लेनिनवाद के नेतृत्व में विकसित हुआ।

माओ त्से-तुंग और लि ता-चाओ, जो कम्युनिज़्म का प्राथमिक ज्ञान रखने वाले क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी दल का प्रतिनिधित्व करते थे, पहले से ही इस विचार के समर्थक थे कि चीनी जनता को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए 'रूसियों का पथ अपनाना चाहिए" और जनता की महान एकता का निर्माण करना चाहिए। उन्होंने चार मई आन्दोलन मे जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष का नेतृत्व किया। उन्होंने युवकों से क्रान्तिकारी ध्येय अपनाने और जनता में काम करने की अपील की।

चीन मे मार्क्सवाद-लेनिनवाद का प्रसार करने के लिए उन्हें उसके शत्रुओं के विरुद्ध निरन्तर सैद्धान्तिक संघर्ष करना पड़ा। जब चीन के जंगजू मज़दूर वर्ग ने चीन के राजनीतिक जीवन मे अपना एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान बना लिया और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा, जो जनता को सही क्रान्तिकारी पथ पर ले जा रही थी, तेजी से लोकप्रियता प्राप्त करने लगी तो यह प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो गया कि चीन का भविष्य पूंजीवाद में निहित है या समाजवाद में। दूसरी ओर बुर्जुआ बुद्धिजीवी, जिनका मुख्य प्रतिनिधि हू शिः था, अपने वर्ग-हितों की सुरक्षा के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद का विरोध करने लगे थे। उनकी कोशिश थी कि चीन में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के बढ़ते हुए प्रभाव को रोका जाए और जनता में फैले उसके क्रान्तिकारी असर को नष्ट कर दिया जाए। जुलाई १९१९ मे चीन के बुद्धि-जीवियों में एक बहस छिड़ गयी जिसका विषय 'वाद और समस्याएं'* था। कम्युनिस्टों ने बुर्जुआ सुधारवादियो को करारी हार दी। इस बहस ने संयुक्त सांस्कृतिक मोर्चे की एकता को भी भंग कर दिया। १९२० में कम्युनिस्टों ने उन तथाकथित समाजवादियों† को भी बुरी तरह परास्त किया जो लियांग

*** हु शिः ने बुद्धिजीवियों से अपील की थी कि वे समस्याओं के अध्ययन पर ज़ोर दें और 'वादों' की चर्चा कम करें। यहां उसने 'वाद' शब्द मार्क्सवाद-लेनिनवाद के लिए प्रयुक्त किया था।**

† इन तथाकथित समाजवादियों की दलील यह थी कि क्योंकि चीन में औद्योगिक सर्वहारा अभी तक नहीं है, इसलिए यहां समाजवादी आन्दोलन असंभव है। उनका दावा था कि पहले विदेशी पूंजीपतियों तथा उनके इशारों पर चलने वाले चीनी पूंजीपतियों के हाथों 'उद्योग का प्रसार' होगा और फिर उसके बाद समाजवादी क्रान्ति होगी। इस तरह के दृष्टिकोण से यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि वे साम्राज्यवादियों, ज़मींदारों और साम्राज्यवादियों के इशारों पर चलने वाले देशी पूंजीपतियों के टुकड़खोर थे।

चि-चाओ के नेतृत्व में मार्क्सवाद के विरोध का झंडा उठाये फिरते थे और जो वस्तुतः ज़मीदारों तथा साम्राज्यवादियों के इशारों पर चलने वाले देशी पूंजीपतियों के प्रतिनिधि थे। सैद्धान्तिक मोर्चे की इन सफलताओं ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रभाव को जनता में और बढ़ा दिया।

शुरू के कम्युनिस्ट दल

१९२० में चीन में कम्युनिस्ट दलों और एक कम्युनिस्ट नौजवान सभा की स्थापना हुई। चेन तु-श्यू ने कुछ और लोगों के संग मिल कर मई १९२० में शंघाई में सब से पहले कम्युनिस्ट दल की स्थापना की।

माओ त्ज़े-तुंग ने शंघाई में कम्युनिस्ट दल से सम्बन्ध स्थापित किया और उसी वर्ष जुलाई में हुनान प्रान्त की राजधानी चांगशा में वापस आ कर एक ऐसा दल संगठित किया जिसका उद्देश्य मार्क्सवाद का अध्ययन करना था। अक्तूबर में उन्होंने समाजवादी नौजवान सभा की स्थापना की। उन्होंने हुनान के कई श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों और नौजवान मज़दूरों को इन दलों में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया। माओ त्ज़े-तुंग ने इस तरह इन संगठनों का निर्माण कर कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के लिए रास्ता तैयार कर दिया। इन्हीं दिनों लि ता-चाओ और दूसरे लोगों ने पेकिंग में, तुग पी-वू, चेन तान-चियू इत्यादि ने हूपेः प्रान्त में, तथा वांग चिन-मे और अन्य लोगों ने शान्तुग प्रान्त के त्सीनान में कम्युनिस्ट दलों की स्थापना की।

इस तरह के अनेक दल क्रमशः टेंटशिन, हांगचो और कैण्टन में भी स्थापित हुए। जापान में अध्ययन करने वाले चीनी छात्रों ने भी एक ऐसे दल की स्थापना की। पेरिस में चाओ एन-लाइ, चाओ शिह-येन, वांग जो-फ़े, लि फ़ू-चुन, शियांग चिंग-यू और अन्य चीनी विद्यार्थियों ने एक चीनी नौजवान कम्युनिस्ट सभा स्थापित की।

चीन का मज़दूर वर्ग, जो चार मई आन्दोलन में अनुभव और शक्ति प्राप्त कर चुका था, एक अदम्य विश्वास के संग अपना संघर्ष आगे बढ़ाने लगा। १९१९ में ६६ हड़तालें हुईं (इनमें चार मई आन्दोलन की राजनीतिक हड़तालें भी शामिल थीं)। २६ हड़तालों में ९१,००० से ऊपर मज़दूरों ने भाग लिया (दूसरी हड़तालों में भाग लेने वाले मज़दूरों की संख्या दर्ज नहीं की गयी)। १९२० में ४६ हड़तालें हुईं जिनमें से १९ हड़तालों में ४६,००० से ऊपर मज़दूरों ने भाग लिया। उस समय, जब मज़दूरों का संघर्ष इतनी तेज़ी से आगे बढ़ रहा था, उन्हें सही सैद्धान्तिक और संगठनात्मक नेतृत्व की आवश्यकता महसूस हुई।

उन्हें यह नेतृत्व उन कम्युनिस्ट दलों से मिला जो देश के विभिन्न भागों में लगातार कायम होते चले जा रहे थे।

माओ त्जे-तुंग और हुनान के मज़दूर

कॉमरेड माओ त्ज़े-तुंग १९२० की गर्मियों के शुरू में मज़दूर आन्दोलन की रोज़मर्रा की कार्यवाहियों में बड़ी सरगर्मी से भाग ले रहे थे। वह चांगशा के उन क्षेत्रों में घूमे जहां मज़दूर रहा करते थे और उन्होंने अपना सम्पर्क रेलवे-मज़दूरों, प्रेस-कर्मचारियों, कपड़ा-मज़दूरों, बढइयों, राजगीरों और ट्रान्सपोर्ट-मजदूरों के संग बहुत बढा लिया। वह मज़दूरों की सेवा में जुट गये। उन्होंने मजदूरों के लिए रात्रि पाठशाला खोली जिसमें उन्हें मार्क्सवाद के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाने लगी। उन्होंने सक्रिय कार्यकर्ता तैयार किये और उनके जरिए मज़दूर जनता के संग अपना गहरा और अटूट सम्बन्ध कायम रखा। उन्हें इस बात का श्रेय भी प्राप्त है कि उन्होंने चांगशा में हुनान मजदूर-यूनियन के कार्यकर्ताओं और नेताओं को मार्क्सवाद की ओर आकर्षित किया। इस यूनियन का राजनीतिक ज्ञान बहुत ही सीमित और अपरिपक्व था और यह अपना ज़ोर अधिकतर आर्थिक मांगों पर ही रखा करती थी। यह माओ त्ज़े-तुंग के असीम धैर्य और प्रचार-कुशलता का ही परिणाम था कि अन्त में यूनियन ने नवम्बर १९२० में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा को स्वीकार कर लिया। १९२१ के पूर्वार्ध में ही माओ त्ज़े-तुंग के नेतृत्व में चांगशा के औद्योगिक मज़दूर और दस्तकार संगठन-बद्ध हो चुके थे।

उन्हीं दिनों शंघाई के कम्युनिस्ट दल ने एक मजदूर पाठशाला की नींव रखी, इंजीनियरिंग कर्मचारियों की एक यूनियन बनायी और प्रेस-मज़दूरों को एक यूनियन में संगठित किया। पेकिंग के कम्युनिस्ट दल में काम करने वाले तेंग चुन-श्या आदि नेताओं ने भी पेकिंग के पास चांगशिनत्येन में एक मज़दूर पाठशाला की स्थापना की और रेलवे-मजदूरों के लिए क्लब तथा काम और अध्ययन के लिए एक पारस्परिक सहयोग सभा का निर्माण किया। हूपे: प्रान्त के कम्युनिस्ट दल ने रिक्शा-मज़दूरों की एक हड़ताल १९२१ में संगठित की। कैण्टन और त्सीनान में भी कम्युनिस्ट दल सक्रिय रूप से मज़दूर आन्दोलन में भाग लेते रहे। फ्रांस में, चीनी नौजवान कम्युनिस्ट सभा ने चीन के बाहर बसने वाले प्रवासी चीनी मज़दूरों में मार्क्सवाद का प्रचार आरम्भ कर दिया।

कई शहरों में मज़दूरों के लिए पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं, उदाहरणत:

शंघाई मे 'मजदूर', पेकिंग में 'मेहनत की गूज' और कैण्टन में 'मज़दूर-आवाज़' नामक पत्रिकाएं छपने लगी। इन सब पत्रिकाओं में मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का प्रचार सहज-सरल रूप मे किया जाता था। मज़दूरों के क्रान्तिकारी संघर्षो का नेतृत्व करना भी इन पत्रिकाओं का उद्देश्य था।

इस तरह चीन में मजदूर आन्दोलन का मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संग एक गहरा और अटूट सम्बन्ध स्थापित हो गया।

पार्टी की स्थापना

चीनी जनता के लिए पहली जुलाई १९२१ एक ऐतिहासिक महत्व का दिन है। इसी दिन चीन की महान कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई थी।

सात कम्युनिस्ट दलों ने हुनान, हुपेः, शंघाई, पेकिंग, त्सीनान, कैण्टन और टोकियो (जापान) में काम करने वाले ५० कम्युनिस्टों की ओर से १२ प्रतिनिधियों को चुन कर इस कांग्रेस में भेजा। शंघाई मे, जो चीन का औद्योगिक केन्द्र है, कम्युनिस्ट पार्टी की यह प्रथम कांग्रेस बुलायी गयी।

प्रथम पार्टी कांग्रेस ने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का पहला विधान पास किया, केन्द्रीय समितियों का चुनाव किया और चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना की। कांग्रेस के डेलीगेटों में माओ त्जे-तुग, हो शु-हेंग, तुग पी-वू, चेन तान-चियू भी शामिल थे जो चीन की पार्टी के सर्वश्रेष्ट और सब से पुराने सदस्यों में गिने जाते है।

कांग्रेस पांच दिन तक चलती रही। पांचवें दिन शंघाई में स्थित फ्रांसीसी पुलिस ने उस स्थान पर छापा मारा जहा कांग्रेस की बैठक हो रही थी। इसलिए, कांग्रेस को अपना अन्तिम अधिवेशन नान हू (दक्षिण झील) मे करना पड़ा जो चेकियांग प्रान्त में शंघाई-हांगचो रेलवे के बीच प्राकृतिक दृश्यों के रमणीक स्थल काशिग में स्थित है।

कांग्रेस के एजण्डे मे निम्न विषय शामिल थे : उस समय की राजनीतिक परिस्थिति, पार्टी के बुनियादी कर्तव्य तथा पार्टी का ढांचा और संगठनात्मक सिद्धान्त। पार्टी के संगठनात्मक सिद्धान्तों का प्रश्न बहस का मुख्य विषय था।

कांग्रेस ने इन प्रश्नों पर जो प्रस्ताव पास किये वे उचित और सही थे। पार्टी का बुनियादी कर्तव्य, जैसा कि प्रस्ताव में बताया गया, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की प्राप्ति के लिए सघर्ष करना था। किन्तु, साथ ही इस बात पर भी ज़ोर दिया गया था कि पार्टी को इस बीच बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति में सक्रिय भाग लेने के लिए सर्वहारा वर्ग का आह्वान करना चाहिए। उससे अलग

रहना उसके लिए अनुचित होगा। कांग्रेस ने संगठनात्मक सिद्धान्तों के बारे में यह फ़ैसला किया कि कम्युनिस्ट पार्टी को सर्वहारा वर्ग की जंगजू, अनुशासित और क्रान्तिकारी पार्टी बनना चाहिए। इस तरह पार्टी ने एक सही राजनीतिक नीति और संगठनात्मक सिद्धान्त की नींव डाली।

कांग्रेस ने इस बात को भी स्वीकार किया कि पार्टी का मुख्य और फ़ौरी काम ट्रेड यूनियन आन्दोलन को मज़बूत बनाना है। यह भी निश्चय किया गया कि पार्टी को कानूनी आधार पर एक ट्रेड यूनियन सेक्रेटेरियट की स्थापना करनी चाहिए जिसके द्वारा ट्रेड यूनियन आन्दोलन का नेतृत्व किया जा सके। कांग्रेस ने यह फ़ैसला किया कि पार्टी को उन सब खुले और वैधानिक तरीकों का उपयोग करना चाहिए जो मज़दूरों के लिए हितकारी हों। कांग्रेस ने तय किया कि पार्टी को सुन यात-सेन के नेतृत्व में चलने वाले प्रगतिशील आन्दोलन का समर्थन करना चाहिए।

पार्टी के ढांचे के सम्बन्ध में यह फैसला किया गया कि कांग्रेस शंघाई में एक केन्द्रीय कार्य-विभाग स्थापित करेगी और अन्य स्थानों पर स्थानीय पार्टी-संगठनों की स्थापना करेगी। इसके अलावा, नौजवान समाजवादी सभा का सारे देश में प्रसार होना चाहिए।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म चीन के आधुनिक इतिहास की सब से महत्वपूर्ण घटना है। चीन के लोग और मज़दूर वर्ग शताब्दियों से कष्ट और विपत्तियां सहते आ रहे हैं। उन्हें एक ऐसी शक्तिशाली, क्रान्तिकारी पार्टी की आवश्यकता थी जो जनवादी क्रान्ति को सफल बनाने में उनका नेतृत्व कर सके, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद तथा नौकरशाही पूंजीवाद के विरुद्ध डट कर संघर्ष कर सके, और जो भविष्य में समाजवाद की स्थापना करने में सफल हो सके। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना इसी ऐतिहासिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए हुई है।

('पीपुल्स चायना' अंक १३ १९५४)